कुरुक्षेत्र

जुलाई 1992

तीन रुपये

ग्रामीण उत्थान में बैंकों की भूमिका

ग्रामीण बैंकिंग प्रणाली - कुछ चुनौतियां

□ ज्योति कपूर □

□ जी.एस. शेखावत □

देश के आर्थिक विकास में, ग्रामीण भारत का विशेष महत्व है। हमारी 84 करोड़ की जनसंख्या में 76 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास कर रही है। इसमें से लगभग 24 करोड़ व्यक्ति निर्धनता की रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। वास्तव में, मार्च 1990 में भारत के सभी वाणिज्यक बैंकों ने इस वर्ग के व्यक्तियों के 42 लाख खातों में अपनी कुल अग्रिम राशि का केवल 1 प्रतिशत विभेदात्मक ब्याज दर स्कीम के अन्तर्गत दे रखा था। इसके अतिरिक्त आदिवासी क्षेत्रों के अधिकांश गांव तथा देश के पहाड़ी व मरूस्थली भाग आज भी बैंकिंग सेवाओं से वंचित हैं।

अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले भारतीय व्यक्ति प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से कृषि से सम्बद्ध हैं। यहां निवास कर रहे प्रत्येक व्यक्ति की पिछली कुछ दशाब्दियों से साख के गुणवत्ता प्रयोग अथवा उसकी सामयिक वसूली की बजाए अधिक सस्ते ऋणों की मांग रही है। भविष्य में, बैंकिंग प्रणाली के कृषि के मांग पक्ष व पूर्ति पक्ष की ओर से उत्पन्न चुनौतियों के कारण इस प्रकार के दबाव और भी अधिक विषम हो सकते हैं।

कृषि के मांग पक्ष की ओर से उत्पन्न मुख्य चुनौतियां निम्न रही हैं:—

1. कृषि की घटती हुई लाभप्रदता।

2. ग्रामीण रोजगार की निष्क्रियता की अवस्थिति।

3. ग्रामीण निर्धन व्यक्तियों की बढ़ती हुई आंकाक्षाएं।

4. बढ़ते हुए क्षेत्रीय असन्तुलन।

पूर्ति पक्ष से सम्बद्ध बड़ी चुनौतियां इस प्रकार रही हैं:—

1. लक्ष्य - ऋणियों का अपर्याप्त हित।
2. बढ़ते हुए अवधिपार ऋण।
3. ग्रामीण बैंकों की घटती लाभप्रदता।
4. बढ़ते कार्य भार तथा बैंक तकनीकी में असमायोजन।

ग्रामीण बैंकों को अधिक जागरूक व उत्तरदायी बनाने की दृ
से विगत वर्षों में कई संस्थागत सुधार लागू किए गए, जिनमें नि
नीतिगत व संघनीय अभिनव परिवर्तन शामिल हैं:—

(अ) लीड बैंक स्कीम। (ब) जिला साख नियोजन। (स) वार्षिक-क्रि
योजना। (द) कृषक सेवा समिति, बड़े आकार की आदिवासी बहुउद्देशी
समितियां, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक। (य) जिला स्तरीय परामर्श समि
(DLCC)/ खण्ड स्तरीय परामर्श समिति (BLCC)/ राज्य स्तरीय बैंक
समिति (SLBC)। (र) नाबार्ड की स्थापना। (ल) सेवा क्षेत्र दृष्टिको
को शामिल करते हुए ग्राम अधिग्रहण योजना। (व) साख-कैम
इत्यादि।

ग्रामीण बैंकिंग प्रणाली की कुछेक विशाल चुनौतियां हैं जो इस
तात्कालिक भविष्य को स्पर्श करती हैं। ये हैं:—

1. लक्ष्य-ऋणियों का अपर्याप्त हित। 2. ग्रामीण बैंकों के बढ़ते अवधिप
ऋण तथा 3. लाभप्रदता का निम्न स्तर।

लक्ष्य ऋणियों का अपर्याप्त हित

एक बड़ी वित्तपोषक संस्था के रूप में वाणिज्यक बैंकों में य
सुनिश्चित करने की प्रवृत्ति होती है कि ऋण लेने वाली संस्था
को ऋण सदैव अर्थ क्षमता के सिद्धान्तों तथा उनकी लाभप्रद
के आधार पर दिए जाएं, लेकिन वर्तमान में ग्रामीण बैंकों की अर्थक्षम
की स्थिति अच्छी नहीं है। हाल ही के वर्षों में उनकी पूंजीग
निधियों में सुधार नहीं हो रहा है। उनके द्वारा कमजोर वर्गों
ऐसी दर पर ऋण दिया जा रहा है, जिससे निधियों का खर्च
पूरा नहीं होता। उनकी कीमत-लागत अन्तर पर आधारित अ
में सुधार नहीं हो रहा है। उनका प्रचालन व्यय दिन-प्रतिदिन बढ़
जा रहा है जबकि उसी अनुपात में आय नहीं बढ़ रही है। उन
निधियों को अधिकांशतः ऋण के रूप में अटका दिया जाता
और ऋण नीति के कारण इन निधियों का निवेश सरकारी प्रतिभूति

37, अंक 9 आषाढ़-श्रावण शक 1914

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय का प्रमुख मासिक

फोटो साभार : फोटो प्रभाग, सलमान ज़मीर एवं रमेश कुमार, ग्रामीण विकास मंत्रालय

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य, चित्र आदि भेजिए । अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है ।

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने व अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए ।

विषय सूची

ग्रामीण बैंकिंग प्रणाली - कुछ चुनौतियां 2
ज्योति कपूर
जी.एस. शेखावात

ग्रामीण विकास में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की भूमिका 7
सुरेन्द्र कुमार भार्गव

आधी दुनिया के सपने 10
आशा रानी व्होरा

औद्योगिक एवं ग्रामीण विकास 13
डा० गिरिजा प्रसाद दूबे

ग्राम उद्योग - कैसे पनप सकते हैं? 15
वेद प्रकाश अरोड़ा

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का योगदान 18
धर्मपाल जांगिड़
भुवनेश गुप्ता

पर्यावरण रक्षण बैंकों की सहायता से 21
इंदु शेखर व्यास

शिक्षा का महत्व (कहानी) 23
माया देवी

कृषि साख - दशा एवं दिशा 25
डा० अजय जोशी

नवीन आर्थिक परिवर्तन एवं ग्रामीण विकास 27
डा. अभय
डा. एस.के. महेन्द्रा

बैंक और भारतीय कृषि वित्त 30
डा० सुबोध कुमार

ग्रामीण गरीबी तथा बेरोजगारी निवारण 32
डा० हरि वल्लभ त्रिवेदी

पूर्वी उत्तर प्रदेश का अर्थिक पिछड़ापन 37
डा० ईश्वर दत्त सिंह

गढ़वाल मण्डल के विकास में गंगा-यमुना ग्रामीण बैंक का योगदान 40
डा० बृजमोहन परगाई
डा. पी.के. पाठक

ग्रामीण बैंक और उनकी उपादेयता 45
डा० अभय कुमार मित्तल

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हो ।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), ग्रामीण विकास मंत्रालय, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें । **दूरभाष : 384888**

ग्रामीण बैंकिंग प्रणाली - कुछ चुनौतियां

□ ज्योति कपूर □

□ जी.एस.शेखावत □

देश के आर्थिक विकास में, ग्रामीण भारत का विशेष महत्व है। हमारी 84 करोड़ की जनसंख्या में 76 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास कर रही है। इसमें से लगभग 24 करोड़ व्यक्ति निर्धनता की रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। वास्तव में, मार्च 1990 में भारत के सभी वाणिज्यक बैंकों ने इस वर्ग के व्यक्तियों के 42 लाख खातों में अपनी कुल अग्रिम राशि का केवल 1 प्रतिशत विभेदात्मक ब्याज दर स्कीम के अन्तर्गत दे रखा था। इसके अतिरिक्त आदिवासी क्षेत्रों के अधिकांश गांव तथा देश के पहाड़ी व मरूस्थली भाग आज भी बैंकिंग सेवाओं से वंचित हैं।

अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले भारतीय व्यक्ति प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से कृषि से सम्बद्ध हैं। यहां निवास कर रहे प्रत्येक व्यक्ति की पिछली कुछ दशाब्दियों से साख के गुणवत्ता प्रयोग अथवा उसकी सामयिक वसूली की बजाए अधिक सस्ते ऋणों की मांग रही है। भविष्य में, बैंकिंग प्रणाली के कृषि के मांग पक्ष व पूर्ति पक्ष की ओर से उत्पन्न चुनौतियों के कारण इस प्रकार के दबाव और भी अधिक विषम हो सकते हैं।

कृषि के मांग पक्ष की ओर से उत्पन्न मुख्य चुनौतियां निम्न रही हैं:—

1. कृषि की घटती हुई लाभप्रदता।

2. ग्रामीण रोजगार की निष्क्रियता की अवस्थिति।

3. ग्रामीण निर्धन व्यक्तियों की बढ़ती हुई आंकाक्षाएं।

4. बढ़ते हुए क्षेत्रीय असन्तुलन।

पूर्ति पक्ष से सम्बद्ध बड़ी चुनौतियां इस प्रकार रही हैं:—

1. लक्ष्य - ऋणियों का अपर्याप्त हित।

2. बढ़ते हुए अवधिपार ऋण।

3. ग्रामीण बैंकों की घटती लाभप्रदता।

4. बढ़ते कार्य भार तथा बैंक तकनीकी में असमायोजन।

ग्रामीण बैंकों को अधिक जागरूक व उत्तरदायी बनाने की [illegible] से विगत वर्षों में कई संस्थागत सुधार लागू किए गए, जिनमें नि[illegible] नीतिगत व संघनीय अभिनव परिवर्तन शामिल हैं:—

(अ) लीड बैंक स्कीम। (ब) जिला साख नियोजन। (स) वार्षिक-त्रि[illegible] योजना। (द) कृषक सेवा समिति, बड़े आकार की आदिवासी बहुउद्दे[illegible] समितियां, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक। (य) जिला स्तरीय परामर्श समि[illegible] (DLCC)/ खण्ड स्तरीय परामर्श समिति (BLCC)/ राज्य स्तरीय बैं[illegible] समिति (SLBC)। (र) नाबार्ड की स्थापना। (ल) सेवा क्षेत्र दृष्टिको[illegible] को शामिल करते हुए ग्राम अधिग्रहण योजना। (व) साख-कै[illegible] इत्यादि।

ग्रामीण बैंकिंग प्रणाली की कुछेक विशाल चुनौतियां हैं जो इ[illegible] तात्कालिक भविष्य को स्पर्श करती हैं। ये हैं:—

1. लक्ष्य-ऋणियों का अपर्याप्त हित। 2. ग्रामीण बैंकों के बढ़ते अवधि[illegible] ऋण तथा 3. लाभप्रदता का निम्न स्तर।

लक्ष्य ऋणियों का अपर्याप्त हित

एक बड़ी वित्तपोषक संस्था के रूप में वाणिज्यक बैंकों में [illegible] सुनिश्चित करने की प्रवृत्ति होती है कि ऋण लेने वाली संस्था[illegible] को ऋण सदैव अर्थ क्षमता के सिद्धान्तों तथा उनकी लाभप्र[illegible] के आधार पर दिए जाएं, लेकिन वर्तमान में ग्रामीण बैंकों की अर्थक्षम[illegible] की स्थिति अच्छी नहीं है। हाल ही के वर्षों में उनकी पूंजी [illegible] निधियों में सुधार नहीं हो रहा है। उनके द्वारा कमजोर वर्गों [illegible] ऐसी दर पर ऋण दिया जा रहा है, जिससे निधियों का खर्च [illegible] पूरा नहीं होता। उनकी कीमत-लागत अन्तर पर आधारित अ[illegible] में सुधार नहीं हो रहा है। उनका प्रचालन व्यय दिन-प्रतिदिन ब[illegible] जा रहा है जबकि उसी अनुपात में आय नहीं बढ़ रही है। उन[illegible] निधियों को अधिकांशत: ऋण के रूप में अटका दिया जाता [illegible] और त्रण नीति के कारण इन निधियों का निवेश सरकारी प्रतिभूति[illegible]

सी कम उत्पादक परिसम्पत्तियों में करना पड़ता है।

यद्यपि ग्रामीण भारत के सीमान्त वर्ग को ऋण वितरण के उद्देश्य ग्रामीण बैंकों ने कुछ लक्ष्य निर्धारित किए हैं फिर भी अनुभव र्शाता है कि गरीब परिवारों को वितरित ऋण का अंश बहुत ही म मात्रा में मिल पाया है। जबकि कुल ग्रामीण परिवारों में से मिहीन परिवारों का प्रतिशत लगभग 30 है।

विश्व कृषि जनगणना (1989) के अनुसार भारत में राज्य स्तर र साख वितरण का भाग गरीब परिवारों में कुल जनसंख्या की लना में असन्तुलित रहा है। रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के एक ध्ययन (फरवरी, 1990) के अनुसार प्राथमिक क्षेत्रों में कुल ऋणियों से लगभग 8 प्रतिशत ही अनुसूचित जाति व जनजाति के ऋणियों ो ऋण वितरित किया गया, जबकि समस्त प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र ऋणियों का अनुपात लगभग 20 प्रतिशत था। अधिकांश गरीब र्ग के ऋणी एक अन्य समस्या का सामना कर रहे हैं। वह है, पर्याप्त व असामयिक ऋण। यहां यह स्मरण करने योग्य है कि ामीण ऋणों की स्वीकृति में सामान्य रूप से विलम्ब होता है एवं शेषकर लघु और सीमान्त कृषक इस संक्रामक रोग से बड़ी मात्रा ग्रसित हैं तथा इस ओर किए गए प्रयास भी अभी तक असफल हे हैं। यह भी सर्वविदित है कि अधिकांश धनी कृषकों ने जितने ण की मांग की उतनी ही पूर्ति हुई, जबकि गरीब वर्ग के कृषकों ो इस मांग की कभी भी पूर्ति नहीं हो सकी।

इसके अतिरिक्त बैंक अधिकारी केवल परियोजना रिपोर्ट का अध्ययन रके ऋण स्वीकृत करते हैं। उन्हें कृषि उद्योगों के संचालन और नके मार्ग में आने वाले अवरोधों का व्यावहारिक ज्ञान प्रायः नहीं ता। इसके अतिरिक्त कई बार राजनीतिक प्रभाव भी कर्ज की ज़ूरी में सहायक होता है।

झाव

. सीमान्त कृषक को कार्यशील पूँजी की पूर्ति के लिए कृषकों के समूह रूप में ऋण दिए जाने चाहिए।

गरीब कृषक न तो संगठित होते हैं, न ही कृषित क्षेत्र में उनका समुचित तिनिधित्व होता है। अतः लघु भू-स्वामियों को स्वतः हित के ए प्राथमिक भूमि विकास बैंकों के माध्यम से संगठित कर सहायता दान की जानी चाहिए।

गरीब कृषक एवं गैर-कृषित क्षेत्र में संलग्न व्यक्तियों को विभिन्न आर्थिक क्रियाओं के लिए प्रेरित करना आवश्यक होगा ताकि समग्र कृषि की उत्पादकता बढ़ाई जा सके।

4. नए प्रकार के बाजार सम्बन्धों को विकसित करना, नई क्रियाओं के लिए नई दक्षता प्राप्त करना और परम्परागत कौशल को सुधारने की भी आवश्यकता है।

साराश में, यदि साख प्रणाली से गरीब वर्ग को लाभान्वित करना है तो वृहत् कार्यक्रम को अपनाना होगा। इसमें बैंकिंग प्रणाली मददगार सिद्ध हो सकती है किन्तु उनकी सभी समस्याओं को हल नहीं कर सकती है।

ग्रामीण बैंकों के बढ़ते अवधिपार ऋण

विगत अनुभव यह दर्शाता है कि बहुतेरी ग्रामीण शाखाएं मूलतः ग्रामीण ऋण प्रदान करने की वजह से आर्थिक नुकसान में हैं। अगस्त 1990 में प्रकाशित आंकड़ों के अनुसार भारत के सरकारी बैंकों और वित्तीय संस्थानों के 20 हजार करोड़ रुपये कर्जों में डूबे हुए थे। इन बैंकों ने कुल 80 हजार करोड़ रुपये का व्यावसायिक कर्ज दिया था। इसमें से 20 हजार करोड़ रुपये का बकाया से तात्पर्य है कि हर एक रुपये के कर्ज में 25 पैसे डूबे हुए हैं।

वर्तमान कानूनों के अन्तर्गत बैंकों के अग्रिमों की वसूली एक कठिन समस्या है। 1980 के दशक में भारत में कृषि ऋणों की वसूली सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के कुल मांग के अनुपात के रूप में गिरकर 1982 में 32 प्रतिशत से 1986 में 22 प्रतिशत रह गयी। 1980 के दशक के प्रथम भाग में अवधिपार ऋण की वार्षिक औसत दर लगभग 18 प्रतिशत बढ़ी है। यह तथ्य भी सही है कि अल्पकालीन ऋणों की वसूली तुलनात्मक रूप में दीर्घकालीन ऋणों से अधिक रही है। दूसरी ओर तीन साल से अधिक अवधिपार ऋणों का प्रतिशत जो 1974 में 23 था वह 1986 में 31 हो गया। आज बैंकों का अरबों रुपया या तो रूग्ण इकाइयों में फंसा पड़ा है या प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र, कृषि एवं परिवहन के क्षेत्र में फंस गया है। छोटे-छोटे ऋणों की वसूली तो और भी कठिन है। अपने ऋणों की वसूली हेतु बैंकों द्वारा न्यायालयों में दायर मुकदमें कई वर्षों तक चलते हैं। इसके बाद न्यायालयों द्वारा ऋणी को किश्तों में भुगतान का निर्देश, ब्याज दर में कमी के आदेश आदि से आज आम ऋणी के मन से बैंक ऋण की वापसी का डर निकल गया है।

बैंकों ने छोटी-बड़ी विभिन्न औद्योगिक कम्पनियों और किसानों को जो कर्ज दे रखा है और इसमें से जिस राशि का समय पर भुगतान नहीं हुआ है वह 10 हजार करोड रुपये तक पहुंच चुकी है। दूसरे शब्दों में बड़ी संख्या में ऐसे लोग हैं जो कर्ज की किश्तें समय पर अदा नहीं करते। समय पर कर्ज अदा न करने वालों में बड़े, मध्यवर्ती और छोटे उद्योग तथा किसान और कमजोर वर्ग के लोग शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, विभिन्न सरकारी योजनाओं के अन्तर्गत आंवटित कृषि एवं अन्य क्षेत्रों में वसूली न होने योग्य बीमार उद्योगों को पुन: स्थापित करने में फंसे करीब 1500 करोड़ रुपये, धोखाधड़ी एवं डकैती इत्यादि में फंसे काफी धन पर न तो कोई आय प्राप्त हो सकती है और न ही यह राशि वसूल होने की सम्भावना है।

हाल ही के समय में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों व प्राथमिक कृषि ऋण समितियों की वसूली का स्तर व्यापारिक बैंकों से कम रहा है। इसलिए अवधिपार कर्ज की वसूली के लिए सरकार कानून बनाने के प्रश्न पर विचार कर रही है।

ऋणों की वृद्धि का एक मूल कारण प्राथमिक क्षेत्रों में प्रयोग में लाई जाने वाली निष्क्रिय तकनीकी तथा योजनाओं से अर्जित आय का कम होना भी रहा है।

इस प्रकार ऋणों की वसूली न होने की समस्या ने ऋण संस्थाओं के अस्तित्व तथा व्यवहार्यता को खतरा पैदा कर दिया है। अत: इस समस्या पर आवश्यक रूप से ध्यान देना चाहिए।

सुझाव

1. सर्वप्रथम विशेष अदालतें स्थापित करके चूकताकर्ताओं के पुनर्भुगतान के मामले शीघ्र निपटाने चाहिए। इसके लिए परिवर्तनशील व्यापारिक ग्रामीण बैंकिंग परिवेश को ध्यान में रखते हुए उद्योग व शाखा दोनों स्तरों पर अस्तित्वात्मक व्यवस्था, कार्यान्वयन, नियन्त्रण और निरीक्षण के नवीनीकरण की आवश्यकता है जिससे अवधिपार देय राशियों की वसूली की जा सके ।

2. बैंकों को प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों को दिए जाने वाले ऋणों का प्रतिशत पुन: निर्धारित करना होगा और ऋणों के लिए ब्याज दर ढांचा उन निधियों की लागत के अनुसार निश्चित करना होगा, जिससे उनकी लाभदायकता पर प्रतिकूल प्रभाव न हो। नरसिम्हम् कमेटी की एक सिफारिश के अनुसार यदि प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों के अग्रिमों का लक्ष्य समाज के कमजोर क्षेत्रों की सहायता करना है तब [illegible] लक्ष्य वर्तमान 40 प्रतिशत के स्तर से घट कर 10 प्रतिशत हो[illegible] चाहिए और इन अग्रिमों पर ब्याज दर बढ़ाकर कम से कम 13[illegible] प्रतिशत कर देनी चाहिए।

3. अब यह पूरी तरह उजागर हो चुका है कि अधिकतर सरकारी [illegible] स्थानीय कार्यकर्त्ताओं को लाभ पहुंचाकर अपने राजनीतिक प्रभ[illegible] में वृद्धि के लिए ऋण मेलों का आयोजन करता है और इन मे[illegible] में प्रस्तुत कार्यकर्त्ताओं की सूची पर आपत्ति प्रकट करने वाले [illegible] प्रबन्धकों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। [illegible] एक अन्त: विरोध की स्थिति है। इसके लिए बैंकों, राज्य सरका[illegible] व्यापारियों, उद्योगपतियों एवं कृषकों के बीच पूरा तालमेल होना चाहि[illegible]

इस प्रकार बैंकों को वास्तविक अर्थ में सन्तुलित व बहुआया[illegible] आर्थिक विकास की मुख्य प्रेरक शक्ति बनाना होगा, जिससे [illegible] पूँजीपति वर्ग की तुलना में आम जनता के हितों की रक्षा व वृ[illegible] में भी समर्थ हो सके।

लाभप्रदता का निम्न स्तर

आर्थिक विकास के मुख्य यंत्र के रूप में कार्यरत बैंकिंग प्रण[illegible] न केवल आर्थिक उन्नति की गति और दिशा से प्रभावित हो[illegible] है बल्कि उसे प्रभावित भी करती है। इसलिए यह आवश्यक है [illegible] वाणिज्यक बैंक, चाहे वे ग्रामीण क्षेत्र में हों या महानगरीय [illegible] में, पर्याप्त लाभ कमाएं एवं लाभ के सापेक्षिक माप के रूप में लाभदायक[illegible] में वृद्धि करें । बैंकों को अपने व्यवसाय में अप्रत्याशित रूप [illegible] हुई क्षति या अन्य आकस्मिक क्षतिपूर्ति हेतु विधि प्रारक्षित क[illegible] प्रबन्धक वर्ग को व्यवसाय में विस्तार या सुधार करने तथा [illegible] घटाने में मदद के लिए तथा अपने बुनियादी सामाजिक दायि[illegible] को निभाने के लिए लाभ कमाना आवश्यक है। संक्षेप में कहा [illegible] तो लाभ सामान्यत: संसाधनों के प्रभावशाली उपयोग का सू[illegible] माना जाता है। अत: वर्तमान बैंकिंग परिप्रेक्ष्य में बैंकों को [illegible] लाभार्जन करते रहना आवश्यक है।

यद्यपि भारतीय सन्दर्भ में, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में सरक[illegible] बैंकों की सफलता के कारण ऐसे क्षेत्रों में जहां बैंकों की शा[illegible] नहीं हैं या कम हैं, वहां सामाजिक कल्याण के लिए बैंकों की शा[illegible] खोलना उपयुक्त है, किन्तु पिछले 7-8 वर्षों में खोली गई [illegible] की शाखाओं से पर्याप्त आय नहीं हुई है तथा नई शाखाओं[illegible] विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में व्यवसाय से जो आय होती है, वह

शाखाओं के परिचालन व्यय के अनुपात में नहीं होती। परिणाम स्वरूप, वाणिज्यक बैंकों की घाटेवाली शाखाओं की संख्या काफी अधिक है, उनमें उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। नंबूद्रिपाद (1988) के एक अध्ययन के अनुसार लगभग बैंकों की 54,000 शाखाओं में से 12,814 शाखाएं घाटे में जा रही हैं अर्थात् अनुमानतः इस समय लगभग सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की 25 प्रतिशत शाखायें घाटे में जा रही हैं। वर्ष 1986 में इन शाखाओं में 267 करोड़ रुपये का घाटा हुआ जिसमें 175 करोड़ रुपये ऐसी 6228 शाखाओं के हिस्से में आता है जिन्हें खुले 5 साल से अधिक हो गए हैं तथा जो निरन्तर तीन सालों से घाटे में जा रही हैं।

इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में हुए बैंकों के शाखा विस्तार से बैंकों की वित्तीय स्थिति प्रभावित हुई है एवं सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की लाभदायकता, जो कि शुद्ध लाभ का औसत कार्यशील निधि से प्रतिशत अनुपात के रूप में वर्णित की जाती है, पिछले कुछ वर्षों में कम हुई है। वर्ष 1987 में यह 0.17 प्रतिशत थी जो मार्च 1990 में घटकर 0.13 प्रतिशत रह गयी।

भारत में, बैंकों को विभिन्न प्रतिबन्धों के अन्तर्गत कार्य करना पड़ता है। बैंक प्रबन्धकों को आय बढ़ाने तथा व्यय घटाने के लिए बहुत कम स्वतन्त्रता प्राप्त है। बैंकों की आय का एकमात्र महत्वपूर्ण स्रोत बैंक ऋणों से प्राप्त होने वाला ब्याज है। लेकिन भारतीय रिजर्व बैंक राष्ट्र के आर्थिक एवं मौद्रिक लक्ष्यों तथा ऋण नीतियों के आधार पर प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों को दिये जाने वाले ऋणों का भी न्यूनतम लक्ष्य निर्धारित करता है जो वर्तमान समय में 40 प्रतिशत है। बैंकों को रूग्ण औद्योगिक संस्थानों को भी वित्त प्रदान करना पड़ता है, जिससे ऋण संसाधन अवरूद्ध हो जाते हैं और निधियों के आवर्तन में गिरावट आती है।

इसके अतिरिक्त बैंकों की आय के जो अन्य स्रोत हैं, उनमें न्यास विभाग की आय, जमा खातों पर सेवा प्रभार, अन्य प्रभार कमीशन एवं अन्य परिचालन आय, चैकों की वसूली, ड्राफ्ट जारी करने और हुंडियाँ स्वीकृत करने के प्रभार, सम्पत्ति तथा लॉकरों के किराए अन्य बैंकों में किए गए सावधि जमा के ब्याज आदि हैं। यद्यपि बैंकों के लिए आय के अन्य स्रोत भी महत्वपूर्ण हैं, लेकिन ऋणों और निवेशों से हुई आय की तुलना में ये बहुत अल्प हैं। बैंकों को अन्य सार्वजनिक प्रतिष्ठानों की तरह ही जनता के हितों का सर्वोपरि ध्यान रखना पड़ता है। इसके अतिरिक्त कारोबार के लिए बैंकों में आपसी प्रतिद्वंदिता भी काफी है। परिणामस्वरूप प्रभारों और कमीशनों से वाणिज्यक बैंकों को जो आय होती है वह मामूली होती है और वास्तविक लागत की क्षतिपूर्ति ही करती है।

जहां तक व्यय का पक्ष है, बैंकिंग उद्योग सेवा उद्योग है, जिसके कारण व्यय विशेषकर तात्कालिक व्यय, काफी हद तक निश्चित है। ये न तो उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन ही कर सकते हैं और न परिचालन ही रोक सकते हैं और अपना मानव शक्ति व्यय भी नहीं घटा सकते हैं, जैसा कि अन्य उद्योग करते हैं, परिणामस्वरूप, बैंक के तात्कालिक व्ययों का उनके व्यवसाय से समन्वय नहीं हो सकता।

बैंकों के व्यय की सबसे बड़ी मद सावधि जमा राशियों पर दिया जाने वाला ब्याज है, पिछले कुछ वर्षों में सावधि जमा राशियों पर जो ब्याज दरें बढ़ाई गई हैं, उनके कारण बैंकों द्वारा प्रदत्त ब्याज की मात्रा बहुत अधिक बढ़ गई है जबकि बैंकों द्वारा दिए जाने वाले ऋणों पर ब्याज दर तदनुरूप नहीं बढ़ाई गयी है। इसके बाद दूसरा सबसे बड़ा व्यय-वेतन, मजदूरी, ओवरटाइम जैसे परिचालन व्यय तथा अन्य स्थापना व्यय हैं। चूंकि बैंकिंग उद्योग में मजदूरी का ढांचा बैंक प्रबन्धकों एवं बैंक कर्मचारी संघों के द्विपक्षीय समझौतें के आधार पर है, इसलिए इसमें कटौती करने के अवसर कम हैं। सरकार की श्रम एवं रोजगार नीति को ध्यान में रखते हुए कर्मचारियों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए बैंक परिचालन का बड़े पैमाने पर यंत्रीकरण भी सम्भव नहीं है। इन परिस्थितियों के कारण आय और व्यय के स्रोत प्रबन्धकों के नियन्त्रण के बाहर हैं।

सामान्य रूप से यह कहा जाता है कि बैंकिंग व्यवसाय 90 प्रतिशत राष्ट्रीयकृत है। अतः बैंक लाभ प्राप्त करें या न करें, कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है, परन्तु यह तर्क उचित नहीं जान पड़ता क्योंकि बैंकों को एक व्यावसायिक प्रतिष्ठान होने के कारण उसके सिद्धान्तों का पालन करना आवश्यक है और इसकी आवश्यकता बैंकिंग विकास के लिए अतिरिक्त साधन जुटाने के कारण और भी अधिक है, जो देश के आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण स्तम्भ है।

सुझाव

यद्यपि सम्पूर्ण भारतीय बैंकिंग प्रणाली की लाभदायकता में सुधार करने के सन्दर्भ में ग्रामीण बैंकों की शाखाओं से महत्वपूर्ण योगदान

अपेक्षित है किन्तु इसके लिए विशेष प्रयासों से बैंकों की ग्रामीण जमाराशियों में वृद्धि करने के विषय पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए क्योंकि ग्रामीण परिवारों के पास कभी-कभी रुपया और उत्पादन अधिकता में रहता है जिसे जमा के रूप में संगृहित किया जा सकता है। अतः व्यावसायिक बैंकर की पटुता इसी बात में है कि वह ऐसी योजनाएं बनाएं जिससे अधिशेषों को हस्तगत कर सकें। इसके लिए स्थानीय अधिकारी और प्रगतिशील ग्रामीण परिवारों के साथ प्रभावशाली सम्बन्धों के परिणामस्वरूप जमा संग्रहण, ऋण आपूर्ति और लाभ की योजनाएं बनाई जा सकती हैं।

ग्रामीण शाखाओं से लाभ प्राप्त करने की पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर निम्नांकित बातों पर गौर किया जा सकता है। इस समय पहले, केन्द्र सरकार ने भारतीय रिजर्व बैंक के परामर्श से ग्रामीण शाखाओं से लाभ प्राप्त करने के विषय में विविध नीतिगत उपाय आरम्भ किए हैं।

— ग्रामीण बचत/जमाराशियों संग्रहण/ग्रामीण बचत राशि जो अन्यथा अनुत्पादक प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाती है, सरकार द्वारा आरम्भ किए गए सामाजिक-आर्थिक विकास कार्यक्रमों में लगाई जाए।

— कृषि उत्पादन में तेजी लाने, ग्रामीण औद्योगीकरण प्रक्रिया में तेजी लाने, ग्रामीण विकास और गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के लिए ऋणों का यथोचित दृष्टि से वितरण किया जा सकता है।

— अर्थ व्यवस्था के पुनर्निर्माण के जरिए वित्तीय सेवाएं प्रदान करने के लिए सुसंगठित आधार बनाना।

— ऋणियों/लाभार्थियों के जीवन स्तर के उन्नयन पर स्पष्ट प्रभाव और निधियों का पुनरावर्तन सरकार द्वारा प्रचलित उपायों में शामिल करना।

इसके अतिरिक्त ग्रामीण शाखाओं को अग्रणी बैंक योजना का पूरा-पूरा लाभ प्राप्त करना चाहिए। विशेषकर जिला ऋण योजना/वार्षिक कृषि योजना और उसके साथ बनाए गए विविध मंचों का भी लाभ प्राप्त किया जा सकता है। ग्रामीण शाखाओं को जिला ऋण योजना/वार्षिक कृषि योजना द्वारा नियत किए लक्ष्यों को तिमाही आधार पर विभाजित करना चाहिए और गैर बैंकिंग कार्यदिवस के दिन गांवों का दौरा, वितरण दिवस पर यथासमय वितरण, ग्राहक सेवा दिवस पर शिकायतों की सुनवाई के जरिए तिमाही लक्ष्यों की पूर्ति के लिए सुनिश्चित व्यवस्था का प्रयास करना चाहिए। वास्तव में स्थानीय संस्थाएं और ग्रामीण शाखा सिक्के का एक पहलू है तो दूसरा पहलू है ग्रामीण परिवार। व्यक्तिगत सौहार्द और समझदारी से ही दोनों एक सूत्र में बांधे जा सकते हैं, जिससे ग्रामीण विकास में बैंकों के योगदान का कार्य पूरा होगा।

निदेशक
राजस्थान इन्स्टीट्यूट
आफ बैंकिंग एवं रूरल डवलेपमेंट
जयपुर

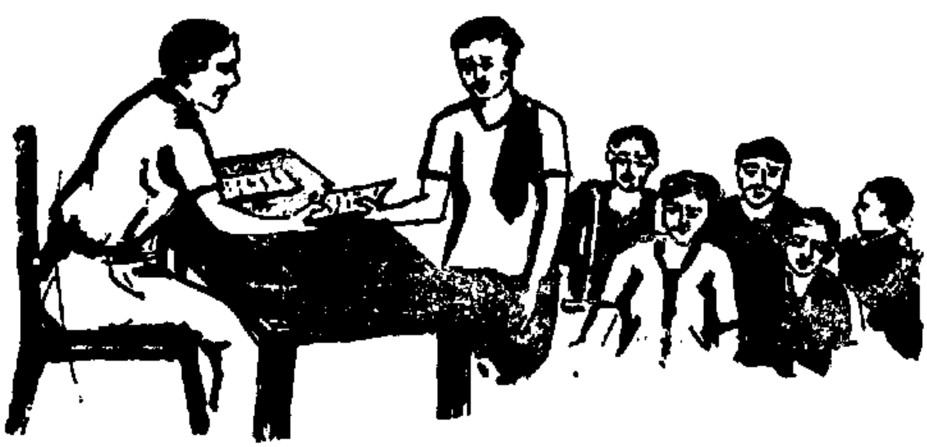

ग्रामीण विकास में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की भूमिका

□ सुरेन्द्र कुमार भार्गव □

भारत में जब ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गयी तब यह विचार अपने आपमें नया नहीं था। वस्तुतः प्रारम्भ में ही ग्रामीण क्षेत्रों की साख से संबंधित हर कार्य सहकारी बैंक करते थे। इस क्षेत्र में सहकारी बैंकों की स्थिति अत्यंत दयनीय रही और सन् 1945 में गठित की गयी गाडगिल समिति ने भी अपनी रिपोर्ट में यह सुझाव प्रकट किया था कि जिन क्षेत्रों में सहकारी बैंकों की स्थिति दयनीय है, उनमें कृषि साख निगम स्थापित किये जाने चाहिये। ग्रामीण बैंकिंग जांच समिति ने भी 1950 में यह मन्तव्य प्रकट किया कि ग्रामीण साख की व्यवस्था करने में सहकारी बैंकों को ही मूलतः प्रमुख भूमिका निभानी चाहिये मगर उनके द्वारा संपादित किये जाने वाले प्रत्येक कार्य में व्यापारिक बैंकों का योगदान अवश्य ही लिया जा सकता है।

ग्रामीण साख जांच समिति 1954 ने भी इस बाबत अपना स्पष्ट मत प्रकट करते हुए कहा कि ग्रामीण साख की मूलभूत समस्या का समाधान करने में सहकारी बैंक सर्वथा विफल रहे हैं अतः उनको शक्तिशाली बनाने के प्रयोजन से स्टेट बैंक की स्थापना की जानी चाहिये। इसी क्रम में ग्रामीण साख समीक्षा समिति 1969 का यह मत था कि सहकारी बैंकों द्वारा की जाने वाली ग्रामीण साख व्यवस्था पर्याप्त नहीं है, अतः व्यापारिक बैंकों द्वारा सहकारी बैंकों के कार्य में सहायता की जानी चाहिये— इतना ही नहीं, समीक्षा समिति ने व्यापारिक बैंकों द्वारा ग्रामीण साख की प्रत्यक्ष रूप में व्यवस्था करने का सुझाव भी दिया।

वर्ष 1969 में चौदह निजी व्यापारिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण का क्रांतिकारी उद्देश्य भी व्यापारिक बैंकों द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग तथा साख की सुविधाओं को विस्तारित किए जाने का एक मुख्य कारण था।

बैंकिंग आयोग 1972 ने ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि तथा ग्रामीण उद्योगों की सहायता के लिए ग्रामीण बैंक स्थापित करने का प्रस्ताव किया।

भारत में ग्रामीण साख सुविधाओं के विस्तार हेतु इन बैंकों का शुभारम्भ 2 अक्टूबर 1975 को 5 ग्रामीण क्षेत्रीय बैंकों की स्थापना से हुआ।

ग्रामीण बैंकों का उद्देश्य

ग्रामीण क्षेत्रों के लघु एवं सीमान्त कृषकों, लघु एवं सीमान्त काश्तकारों, भूमिहीन कृषि मजदूरों एवं ग्रामीण दस्तकारों के साथ ही साथ लघु उद्यमियों आदि की आर्थिक स्थिति को समुन्नत करने के प्रयोजन से क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक्स अधिनियम के अंतर्गत इन बैंकों की स्थापना की गयी। ये बैंक ग्रामीण क्षेत्रों में आवश्यकतानुसार उदारता से ऋण प्रदान करते हैं तथा ग्रामीण क्षेत्रों की छोटी व अल्प बचतों को प्रोत्साहित कर उन्हें उत्पादक कार्यों में गतिशील रखते हैं।

ग्रामीण बैंकों की पूंजी एवं वित्तीय स्रोत

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, भारत सरकार, प्रायोजक बैंक एवं राज्य सरकार के पूर्ण स्वामित्व में होते हैं। इन बैंकों में प्रत्येक की अधिकृत पूंजी एक करोड़ रुपये होती है जिसमें से निगमित एवं प्रदत्त पूंजी 25 लाख रुपये होती है। भारत सरकार, प्रायोजक बैंक एवं राज्य सरकार का आनुपातिक अंशदान क्रमशः 50:35:15 होता है।

ग्रामीण बैंकों का कार्य विवरण

ग्रामीण बैंकों का कार्य क्षेत्र प्रायः एक या दो जिलों तक ही सीमित होता है तथा ये बैंक छोटे किसानों, लघु एवं सीमांत काश्तकारों, भूमिहीन कृषकों एवं ग्रामीण दस्तकारों आदि के लिए ऋण की व्यवस्था करते हैं। ये बैंक दिए गए ऋण पर कम ब्याज की दर लेते हैं यहां तक की सहकारी समिति द्वारा वसूल किए जाने वाले ब्याज की दर से भी इनकी ब्याज दर कम होती है।

ग्रामीण बैंकों के कर्मचारियों की वेतन दरें राज्यों में कार्यशील सरकारी कर्मचारियों के वेतनों के अनुरूप निर्धारित की जाती हैं और इन दरों का निर्धारण करते समय संबंधित क्षेत्र के सरकारी

तथा स्थानीय निकायों के कर्मचारियों की वेतन दरों को ध्यान में रखा जाता है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की प्रगति

इन बैंकों का शुभारम्भ 2 अक्टूबर, 1975 को 5 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना से हुआ। ग्रामीण साख सुविधाओं के विस्तार हेतु जून, 1976 में 19 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गयी। उसके बाद उत्तरोत्तर प्रगति के कारण इनकी संख्या बढ़ कर जनवरी 1984 में 142 तथा जून 1987 में 196 हो गई। अत: 30 जून, 1988 को क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की कुल संख्या 196 थी और उनकी शाखाओं की संख्या 13,568 थी जो देश के राज्यों के 363जिला खण्डों में फैली हुई थी।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के द्वारा दी जाने वाली वित्तीय सहायता में भी उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। जहां 1976-77 में इन बैंकों द्वारा दिये गये ऋणों की कुल राशि 30 करोड़ रुपये मात्र थी वह 1987-88 में 2,232 करोड़ रुपये पहुंच गई। इन बैंकों के ऋणों की प्रगति इस प्रकार है:—

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के ऋणों की प्रगति

विवरण	1976-77	1979-80	1983-84	1986-87	1987-88
ऋण राशि (करोड़ रु० में)	30	115	809	1,897	2,232

इन बैंकों द्वारा समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आईआरडीपी) के लिए 1987-88 में लगभग 254 करोड़ रुपये ऋण दिया गया जो पिछले वर्ष के 200 करोड़ रुपयों से 27% अधिक था। 1987 के अंत में समस्त बकाया ऋणों की राशि लगभग 2,193 करोड़ रुपये थी।

ग्रामीण बैंकों द्वारा स्वीकृत एवं वितरित सहायता

वर्तमान में रिजर्व बैंक द्वारा प्रत्येक गांव का आबंटन व्यापारिक एवं ग्रामीण बैंक के मध्य कर दिया है। वर्तमान में गांव के लिये एक ही बैंक द्वारा ऋण वितरण किये जायेंगे। ग्रामीण बैंक कृषि उद्देश्यों हेतु उन व्यक्तियों को ऋण देती है जिनकी वार्षिक आय 6,500/- रुपये हो एवं कृषि योग्य भूमि 26 बीघा से अधिक न हो एवं अकृषि उद्देश्यों हेतु आवेदक की वार्षिक आय 10,000/- रुपये से अधिक नहीं हो। ग्रामीण बैंकों द्वारा कृषि, कृषि पर सहायक धन्धे, दस्तकार, लघु उद्योग एवं लघु व्यवसाय हेतु ऋण उपलब्ध कराये जाते हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है:—

1. **कृषि उद्देश्यों हेतु**— खाद, बीज,दवाईयां, कुआं, पम्प सेट, फव्वारा, थ्रेशर , हल चलाने के लिये ऊंट, बैल इत्यादि की समस्त लागत राशि ग्रामीण बैंकों द्वारा उपलब्ध करवाई जाती है।

2. **कृषि पर सहायक धन्धे :** ऊंट गाड़ी, बैल गाड़ी, भैंसा गाड़ी, बकरी पालन, भेड़ पालन, मछली, मधुमक्खी पालन, मुर्गी पालन इत्यादि उद्देश्यों हेतु समस्त लागत हेतु ऋण उपलब्ध कराये जाते हैं।

3. **ग्रामीण दस्तकार :** फोटोग्राफी, गलीचा बनाना, प्रिंटिंग मशीन, कुम्हारगिरी, बढ़ईगिरी, लुहारगिरी इत्यादि उद्देश्यों हेतु समस्त ऋण उपलब्ध करवाये जाते हैं।

4. **लघु उद्योग :** ईंटे बनाना, चूना भट्ठा, हेण्डलूम, आटा चक्की, तेल घाणियां, ऊनी वस्त्र, साबुन बनाना, कीलें बनाना, पेण्ट बनाना, सीमेंट की जाली, लोहे के गेट, खिड़कियां,मोमबत्ती बनाना उपरोक्त उद्देश्यों हेतु अधिकतम 50,000/- रुपये तक का ऋण स्वीकृत एवं वितरित किये जा सकते हैं।

5. **लघु व्यवसाय :** पान, बीड़ी, सिगरेट, चाय भोजन का ढाबा, किराना, जनरल, परचूनी दुकान, लकड़ी का टाल, पत्थरों की दुकान इत्यादि उद्देश्यों हेतु बैंक द्वारा 25,000/- रुपये तक ऋण एवं 10,000/- रुपये नकद साख (क्रेडिट लिमिट) उपलब्ध करायी जाती है।

6. **यातायात के साधनों हेतु :** ऊंट गाड़ी, बैलगाड़ी, भैंसागाड़ी, जीप, मिनी ट्रक, इत्यादि उद्देश्यों हेतु ग्रामीण बैंक द्वारा ऋण उपलब्ध कराये जाते हैं।

ग्रामीण बैंक की सहायता योजनायें

ग्रामीण बैंकों की स्वयं की कोई भी सहायता योजनाएं नहीं हैं। भारत सरकार अन्तयोदय योजना के तहत ऋण वितरित करवाती है। सर्वप्रथम ब्लाक स्तर पर प्रत्येक गांव में सबसे निर्धन पांच व्यक्तियों का चयन किया जाता है, उसके पश्चात ग्रामीण बैंक द्वारा चयनित व्यक्तियों को उपरोक्त उद्देश्यों हेतु ऋण उपलब्ध करवाया जाता है जिसमें अनुदान भी मिलता है। अनुदान जमीन के वर्गीकरण के हिसाब से स्वीकृत किया जाता है। लघु कृषक को 25 प्रतिशत एवं अन्य काश्तकार को 33 प्रतिशत एवं अनुसूचित जाति व जनजाति को 50 प्रतिशत अनुदान सहायता उपलब्ध करवाई जाती है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की प्रमुख समस्याएं

1. **वित्तीय सहायता की समस्या :** ग्रामीण बैंक के पास सीमित मात्रा में पूंजी होने के कारण बड़े उद्देश्यों, ट्रक, जीप, टेक्टर आदि के लिए आम तौर पर ऋण उपलब्ध नहीं करवाया जाता है।

2. **ड्राफ्ट की सुविधा :** ग्रामीण बैंकों में ड्राफ्ट जारी करने की सुविधा नहीं है।

3. **कार्यरत स्टाफ की समस्या :** ग्रामीण बैंक के कर्मचारियों को गांवों में रहने के कारण मूलभूत सुविधा (यातायात, चिकित्सा, पानी, बिजली, अच्छी शिक्षण संस्थायें) भी उपलब्ध नहीं होती हैं।

4. **पदोन्नति की समस्यायें :** ग्रामीण बैंक का व्यवसाय सीमित क्षेत्र एवं मात्रा में होने के कारण कर्मचारी को पदोन्नति के अवसर नहीं मिलते हैं।

5. **बचत :** पर्याप्त मात्रा में बचत जमाएं प्राप्त नहीं होती हैं।

6. **ऋण वापिसी में विलम्ब :** ग्रामीण ऋणियों द्वारा ऋणों की वापसी समय पर नहीं होती, परिणामस्वरूप बैंकों की जमाओं से ऋण अधिक होने से बैंकों का तरलता अनुपात कम हो जाता है।

सुझाव

1. **वित्तीय सहायता :** ग्रामीण बैंक व्यापारिक बैंकों द्वारा संचालित किये जाते हैं अतः समस्त राशि संचालित बैंकों द्वारा उपलब्ध करवाई जाये एवं समस्त उद्देश्यों हेतु ऋण वितरणों का अधिकार दिये जायें।

2. **ड्राफ्ट की सुविधा :** समस्त ग्रामीण बैंक के संचालित बैंक द्वारा ड्राफ्ट की बुकलेट उपलब्ध करवायी जाये एवं ग्रामीण बैंकों को संचालित बैंक की शाखा मानते हुये ड्राफ्ट की सुविधा उपलब्ध करवायी जाये।

3. **स्टाफ की समस्या :** स्टाफ को निकटतम शहर में रहने की अनुमति दी जानी चाहिये।

4. **पदोन्नति की समस्या :** ग्रामीण बैंक के कर्मचारी की पदोन्नति कर संचालित बैंकों में पोस्टिंग दी जानी चाहिये। पदोन्नति में ग्रामीण कर्मचारियों का एक कोटा निश्चित कर देना चाहिये।

द्वारा श्री ओमप्रकाश भार्गव
सीनियर बिरला पब्लिक स्कूल के पास
पो० पिलानी 333 031
जिला झुंझनू (राज०)

आधी दुनिया के सपने

◻ आशारानी व्होरा ◻

सपने देखना मनुष्य का स्वभाव है। यह अलग बात है कि सपने उम्र के अनुसार, सामाजिक स्थिति के अनुसार और आर्थिक हैसियत के अनुसार, अलग-अलग होते हैं। पर इधर कुछ वर्षों से शिक्षा-साक्षरता के बिना भी, जो जागृति आई है और जो चेतना मुखर हुई है, उसमें अधिकार-चेतना भी उत्तरोत्तर जागृत होती गई है। भले ही इस चेतना में अधिकार व कर्तव्य का क्रम संतुलित होने के बजाय उलट गया हो। यानी अब तक मात्र त्याग और कर्तव्य में ही पिसती हुई नारी की सोच में प्रतिक्रियास्वरूप इधर अधिकार-चेतना उसकी कर्तव्य-चेतना पर हावी होती गई हो, स्थितियों की इस करवट या बदलाव की ओर से आंख मूंदना अब असंभव हो गया है।

इधर पक्षधर मीडिया और सामाजिक सर्वेक्षणों की रिपोर्ट जिस तरह आए दिन महिला-आंदोलनों को हवा दे रही हैं, उसमें दिनोंदिन तीव्र से तीव्रतर होती आंदोलनों की दस्तकों को अब नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

संयुक्त राष्ट्र संघ की ताजा रिपोर्ट— 'विश्व में महिलाएं 1970-90' के निष्कर्षों के अनुसार पिछले 20 सालों में 178 देशों की स्त्रियों की स्थिति में कोई क्रांतिकारी अंतर नहीं आया है। महिलाओं का बहुत बड़ा वर्ग सत्ता, सम्पत्ति और आगे बढ़ने के अवसरों के मामले में पुरुषों से बहुत पीछे है तथा पुरुषों के मुकाबले स्त्रियों की स्थिति दोयम दर्जे के नागरिकों जैसी है। निर्धनतम अफ्रीकी मुल्कों से लेकर अतिसम्पन्न यूरोपीय देशों तक महिलाएं हर क्षेत्र में उपेक्षा और भेदभाव की शिकार बनी हुई हैं।

दस्तावेज के अनुसार, पूरी दुनिया में महिलाएं आर्थिक उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिकाएं अदा करती हैं, पर उन्हें श्रमिक वर्ग का हिस्सा नहीं माना जाता। अनेक देशों में उनकी त्रासदी है कि वे मर्दों के मुकाबले ज्यादा घंटे काम करती हैं और मजदूरी मर्दों से कम पाती हैं। विकासशील देशों में अधिसंख्य कामकाजी महिलाएं कृषि-क्षेत्र में कार्यरत हैं। किन्तु सरकारी आंकड़ों में उनका यह योगदान या तो बिल्कुल अनदेखा किया जाता है या उसका सही आकलन नहीं किया जाता। रिपोर्ट के अनुसार, बहुत कम महिलाओं को शहरों में कार्यरत अपने पतियों से पैसा प्राप्त होता है। प्रवासी मर्द घर पर पैसा भेजते तो हैं, पर अपने मां-बाप के नाम, पत्नी के नाम नहीं, जबकि पुरुषों की शहरों की ओर पलायनवादी प्रवृत्ति ने एक नई परंपरा को जन्म दिया है। अब गांवों में हर पांच में से एक परिवार की मुखिया महिला हो गई है।

सरकारी निर्णयों में महिलाओं की पर्याप्त भागीदारी नहीं है। जहां है, वहां भी अधिकतर फैसले या तो 'पुरुष बहुमत' से प्रभावित है या 'पुरुष पूर्वग्रह' से प्रभावित। महिलाओं में बढ़ती राजनीतिक चेतना के बावजूद, दुनिया भर में सिर्फ 3.5 प्रतिशत महिलाएं कैबिनेट मंत्री हैं। मंत्रिमंडलों में उन्हें समुचित प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं। यही स्थिति महत्वपूर्ण आयोगों और राजनीतिक संगठनों में भी है, जबकि शासन-प्रशासन के निर्णायक वोटों में महिला-भागीदारी 40 से 48 प्रतिशत तक रहती है।

यूनिसेफ के अनुसार, अफ्रीका में हर एक लाख बच्चों के जन्म पर लगभग 700 माताएं मृत्यु का ग्रास बनती हैं, दक्षिण एशिया में लगभग 500। यानि हर साल 5 लाख महिलाएं मातृत्व संबंधी कारणों से मृत्यु की शिकार होती हैं और अपने पीछे 10 लाख से ज्यादा मातृविहीन बच्चे छोड़ जाती हैं। औद्योगिक विकसित देशों में यही औसत 10 से नीचे है। पूरी रिपोर्ट में एक अच्छी खबर यही है कि आज महिलाएं 20 साल पहले की दुनिया के विपरीत कम बच्चों को जन्म दे रही हैं।

इन सारे हालातों को मद्देनजर रखते हुए, भारत सरकार ने आठवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में महिलाओं और पिछड़े वर्गों पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया है। इस समय पूरे विश्व में बड़े-बड़े परिवर्तन हो रहे हैं, जिनमें सोवियत संघ का विघटन, पूर्वी यूरोप में परिवर्तन, पश्चिमी यूरोप में साझा बाजार तथा विकासशील देशों में बड़े पैमाने पर आर्थिक सुधार शामिल हैं। तमाम विरोधों के बावजूद, भारत की नई सरकार अपनी नई आर्थिक नीतियों को क्रियान्वित करने के लिए कृतसंकल्प है कि वह आगामी दशक के दौरान आने वाली चुनौतियों का सामना कर सके। हमारी कृषि-अर्थव्यवस्था सुदृढ़ और सहनशील है। हमारे पास कुशल श्रमशक्ति का विशाल भंडार है।

हमारे पास पर्याप्त उद्यम-संसाधन भी हैं और हमने विविधतापूर्ण औद्योगिक ढांचा तैयार किया है। इस सब से कृषि-आय में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, प्रति व्यक्ति खपत की वृद्धि दर में बढ़ोतरी हुई है और गरीबी रेखा के नीचे जीने वाले लोगों के प्रतिशत में पर्याप्त कमी आई है। यद्यपि विदेशी मुद्रा के भंडारों में बहुत अधिक ह्रास हुआ है, वित्त-व्यवस्था घरेलू बचतों के अनुमानित स्तर से अपेक्षाकृत कम स्तर पर है और सार्वजनिक क्षेत्रों में बढ़ती अपेक्षाओं के अनुरूप सार्वजनिक-निवेश से मिलने वाली आय में कमी के कारण समस्या बढ़ी है, किन्तु इन स्थितियों में सुधार लाने के लिए अनेक कदम भी उठाए गए हैं। योजनाओं की सफलता के लिए लोगों की 'पहल' और 'भागीदारी' को भी प्रोत्साहित किया जा रहा है। यदि इसी के अनुसार क्रियान्वयन-मशीनरी को भी चुस्त-दुरुस्त तथा भ्रष्टाचारमुक्त किया जा सके तो अनुकूल परिणामों की आशा की जा सकती है।

आठवीं योजना के दस्तावेज में चार बातों की ओर प्रमुख रूप से ध्यान दिया गया है पहली— सघन निवेश के लिए क्षेत्रों/परियोजनाओं का स्पष्ट निजीकरण। दूसरी— देश भर में रोजगार के अवसर पैदा कर, स्वास्थ्य-संरक्षण में सुधार लाकर तथा व्यापक शिक्षा-सुविधाओं का प्रावधान करके सामाजिक सुरक्षा-तंत्र को सुदृढ़ बनाना। तीसरी— प्राथमिकता वाले क्षेत्रों/परियोजनाओं के लिए आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराना। चौथी— कार्यक्रमों के सही क्रियान्वयन के लिए उपयुक्त संगठन तथा प्रदाय प्रणालियां कायम करना, ताकि सामाजिक क्षेत्रों में निवेशों का लाभ वास्तविक लाभभोगियों तक पहुंच सके।

यह सारा कार्य बहुत आसान नहीं है। इन लक्ष्यों : शताब्दी के अंत तक लगभगपूर्ण रोजगार हासिल करने के लिए रोजगार के पूरे अवसर भी पैदा करना होगा। 15-35 वर्ष के आयु-वर्गों में निरक्षरता का पूर्ण उन्मूलन का लक्ष्य सामने रखते हुये सभी बच्चों को प्रारंभिक शिक्षा उपलब्ध कराने के साधन भी जुटाने होंगे। सुरक्षित पेय जल का प्रावधान करने, सभी गांवों की समूची आबादी के लिए रोग-प्रतिरोधी टीके लगाने सहित, प्राथमिक स्वास्थ्य-संरक्षण की सुविधाएं उपलब्ध कराने और खाद्य पदार्थों के मामले में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने जैसे लक्ष्य हासिल करने के लिए जनसंख्या-वृद्धि की रोकथाम करनी होगी। यह बहुत विशाल कार्यक्रम है— हर वर्ष औसतन एक करोड़ अतिरिक्त रोजगार-अवसरों का जुगाड़। 15-35 वर्ग के आयु-समूह में पूर्ण साक्षरता का लक्ष्य प्राप्त करने का अर्थ होगा, लगभग 11 करोड़ लोगों को साक्षर बनाना। 'सन् 2000 तक सभी के लिए स्वास्थ्य' का समग्र लक्ष्य प्राप्त करना भी आसान बात नहीं है। आवास की समस्या का समाधान भी बहुत चुनौतीपूर्ण है। किन्तु गरीबी-उन्मूलन का प्रगति से निकट संबंध स्थापित करने के लिए शिक्षा-व्यवस्था, आवास-प्रबंध और रोजगार-अवसर जरूरी हैं, तो इसके लिए पूरी शक्ति से जुटना भी होगा। अन्य कोई विकल्प नहीं है।

नई नीतियों में महिलाएं

एक सार्थक उक्ति है : यदि आप एक वर्ष के लिए योजना बनाना चाहते हैं तो फसल उगाएं। यदि आप तीस वर्षों के लिए योजना बनाना चाहते हैं तो वृक्ष लगाएं और यदि सौ वर्षों के लिए दीर्घकालीन योजना बनाना चाहते हैं तो इन्सान बनाएं।

माताओं की भूमिका इन्सान बनाने की इसी दीर्घकालीन योजना के साथ प्राथमिक स्तर पर जुड़ी है। तो जाहिर है, मातृ-शिशु कल्याण पर भी प्राथमिकता से ही ध्यान देना होगा। आठवीं योजना में संभवत् इसी लक्ष्य पर दृष्टि केंद्रित करके कहा गया है कि सहायता पाने वालों में 40 प्रतिशत महिलाएं होनी चाहिए। युवा-प्रशिक्षणार्थियों में से 40 प्रतिशत महिलाएं होनी चाहिए। प्रत्येक परीक्षार्थी को तीन सौ रुपये माहवार तक का 'स्टाईपैंड' दिया जाना चाहिए तथा प्रत्येक परीक्षार्थी को लगभग छह सौ रुपये का एक 'टूल-किट' निःशुल्क दिया जाना चाहिए। पिछड़े वर्गों में कम से कम 50 प्रतिशत लाभ अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति को पहुंचाए जाने के लक्ष्य में से 40 प्रतिशत का निर्धारण महिलाओं के लिए तथा 3 प्रतिशत का शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्तियों के लिए— यह व्यवस्था पर्याप्त आशाजनक है, यदि इसका क्रियान्वयन भी इसी सदाशयता से हो सके और उसे देश के सभी 5300 ब्लाकों में जारी किया जा सके।

ग्रामीण क्षेत्रों में महिला और बाल विकास, समन्वित ग्रामीण विकास के कार्यक्रम के अंग के रूप में 1982 में ही शुरू कर दिया गया था। इसका उद्देश्य रोजगार-प्रशिक्षण तथा ऋण-सुविधाएं प्राप्त करने के लिए महिलाओं को अधिक सक्षम बनाना तथा उनका स्तर ऊंचा उठाना है। कल्याण, स्वास्थ्य, पौष्टिक आहार, तथा शिक्षा जैसी सेवाओं में महिलाओं और बच्चों पर विशेष ध्यान देने की व्यवस्था की गई है। 10-15 के समूहों में संगठित महिलाओं के प्रत्येक समूह में आवर्ती कोष के रूप में प्रारंभिक व्यवस्था करके

माल, विपणन और बच्चों की देखभाल आदि के लिए 15 हजार रुपये तक का एकमुश्त अनुदान दिए जाने की व्यवस्था की गई है। सूखाग्रस्त इलाकों, सूखे की आशंका वाले क्षेत्रों और मरुभूमि के लिए विशेष प्रावधान भी लागू हैं।

ग्रामीण जल-आपूर्ति के लिए विशेष प्रबंध करने के साथ, 'जवाहर रोजगार योजना' के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त अनुदानों का प्रावधान किया गया। महिलाओं के लिए 30 प्रतिशत रोजगार आरक्षित भी किए गए। बंधुआ मजदूरों की मुक्ति को सर्वोच्च वरीयता दी गई। 6 प्रतिशत धन-राशि से गरीबी-रेखा से नीचे रहने वाले अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति तथा मुक्त बंधुआ मजदूरों के लिए 'इंदिरा आवास योजना' के तहत लगभग 10 लाख मकान तैयार कराए गए। 20 प्रतिशत संसाधन 10 लाख कुएं खोदने के लिए निर्धारित किए गए। इनके अलावा, जनकल्याण के लिए कुछ और उपाय भी किए गए— जैसे: छोटे और मझौले किसानों के लिए बेहतर ऋण-सुविधाएं मुहैया कराना। परेशानी वाले ग्रामीण सुदूर इलाकों में सार्वजनिक वितरण प्रणाली को अधिक कारगर बनाना। सिर पर मैला ढो कर ले जाने की अमानवीय प्रथा समाप्त करने के लिए कदम उठाना। पिछड़े वर्गों की भलाई के लिए निगम बनाना। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर पैदा करने के लिए कृषि-आधारित उद्योगों को प्रोत्साहन देना। जम्मू-कश्मीर, पंजाब के पीड़ित विस्थापितों के लिए 'जवाहर रोजगार योजना' के अंतर्गत विशेष प्रावधान करना आदि। लेकिन महिलाओं की सभी समस्याओं का समाधान इतने भर से नहीं हो जाएगा। जनसंख्या-नियंत्रण के लिए शिशु-मृत्युदर में कमी लाने, स्वास्थ्य-सेवाओं में सुधार करने के अलावा, बेटे-बेटी में भेदभाव के सामाजिक व्यवधान को भी दूर करना होगा। दहेज जैसी कुरीतियों के उन्मूलन के लिए कारगर कदम उठाने होंगे। सामाजिक सुरक्षा-उपायों के लिए भी स्वयंसिद्ध व्यावहारिक प्रक्रिया को अपनाना होगा कि पुत्र ही बुढ़ापे की सुरक्षा की गारंटी न रहे। जब तक अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा और वृद्धावस्था के लिए अनिवार्य पेंशन की व्यवस्था लागू नहीं होगी, केवल प्रचार से न तो बेटे-बेटी के भेदभाव को कम किया जा सकेगा, न लड़की-शिशु की मृत्यु दर घटाई जा सकेगी, न जनसंख्या पर ही कारगर ढंग से नियंत्रण पाया जा सकेगा। बढ़ते आतंक और उसी अनुपात में बढ़ती सामाजिक असुरक्षा के इस माहौल में सामाजिक बदलाव की इन अनिवार्य और व्यावहारिक प्रक्रियाओं को भी हमारी योजनाओं का अंग होना चाहिए। यह समय की मांग है और यही समस्या-समाधान की ओर एक सही कदम होगा।

जी-302, सेक्टर-22,
नोएडा-201301,

लेखकों से अनुरोध

कृपया अपने लेख टाइप करा कर दो प्रतियों में भेजें। जिन रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न नहीं होगा, वे स्वीकार नहीं की जा सकेंगी। रचना के प्रकाशन के संबंध में किसी प्रकार का पत्र व्यवहार न करें। विशेष अवसरों के लिए लेख एक माह पूर्व अवश्य प्राप्त हो जाने चाहिए। सभी रचनाएं सम्पादक के नाम प्रेषित करें।

औद्योगिक एवं ग्रामीण विकास

□ डा० गिरिजा प्रसाद दूबे □

वर्तमान भारत में भी सम्पूर्ण आबादी का लगभग 70 प्रतिशत भाग आज भी कृषि क्षेत्र पर निर्भर है। इसके विपरीत ब्रिटेन, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, फ्रांस और जापान में क्रमशः 3, 4, 8, 8, 14 और 28 प्रतिशत जनसंख्या का क्रियाशील भाग कृषि क्षेत्र में लगा हुआ है। साथ ही भारत में सकल राष्ट्रीय आय में कृषि की सहभागीदारी 45 प्रतिशत, उद्योग की 19 प्रतिशत तथा नौकरी की 28 प्रतिशत है। जबकि ब्रिटेन, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, फ्रांस और जापान में कृषि की सहभागीदारी क्रमशः 3,3,9,5,9 प्रतिशत ही है। अतएव भारतीय कृषि क्षेत्र और अधिक भार सहने की स्थिति में नहीं है।

कृषि पर से अनावश्यक बोझ को कम करने तथा ग्रामीण विकास को प्रोत्साहित करने के लिए ग्रामीण औद्योगीकरण की महती आवश्यकता है। विकासशील देशों में ग्रामीण औद्योगीकरण और रोजगार के नवीन साधनों को विकसित करना आवश्यक हो गया है। भारत जैसे देश में जहां 40 प्रतिशत से भी अधिक लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले हों और उसमें भी जहां अधिकांश संख्या ग्रामीणों की हो, गरीबी से त्राण दिलाने के लिए साथ ही ग्रामीण विकास को गति प्रदान के लिए ग्रामीण औद्योगीकरण अपरिहार्य सा लगता है। इस सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्रसंघ की समिति के विचार उल्लेखनीय हैं। ''ग्रामीण औद्योगीकरण के महत्व को दुनिया के गरीबी से त्रस्त लोगों के कार्य और जीवन स्तर की दशा सुधारने के साधन के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। यह केवल विविध प्रकार के उत्पादों को तैयार करने के लिए आधुनिक तकनीकी के उपयोग तक ही सीमित नहीं है।''

ग्रामीण विकास के कार्यक्रम

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ग्रामीण विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं के अतिरिक्त निम्न योजनाएं एवं कार्यक्रम चलाये गये:- सामुदायिक विकास योजना, खादी ग्रामोद्योग की समन्वित विकास योजना, पिछड़े क्षेत्रों के विकास की योजना, समन्वित ग्रामीण विकास योजना, ग्रामीण युवा प्रशिक्षण एवं स्वरोजगार कार्यक्रम (ट्राइसेम), सीमान्त कृषक एवं लघु कृषक विकास अभिकरण (एस.एफ. डी.ए.) तथा ग्रामीण औद्योगिक परियोजना आदि। परन्तु भारतीय अर्थव्यवस्था के मूलतः कृषि पर आधारित होने के कारण आजादी के तुरन्त बाद यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि गांवों का औद्योगीकरण कैसे किया जाय। इसके लिए यह स्वीकार किया गया कि ऐसे उद्योग लगाए जाएं जिससे न्यूनतम पूँजी विनियोग से अधिक रोजगार की उपलब्धि हो सके। इसमें प्रगति भी हुई। ऐसे ग्रामीण एवं लघु उद्योगों के विकास से उद्योगों तथा सम्पत्तियों के विकास में बल मिला है। इस समय देश के कुल औद्योगिक उत्पादन का एक तिहाई से अधिक भाग लघु औद्योगिक क्षेत्र से प्राप्त होता है।

महत्व एवं सम्भावनाएं

अनेक सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं और समितियों के अध्ययन एवं सर्वेक्षण प्रतिवेदनों द्वारा ऐसा पाया गया है कि ग्रामीण विकास के अनेकों कार्यक्रम प्रकट एवं अप्रकट त्रुटियों के चलते अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं कर सके। ऐसी स्थिति में ग्रामीण औद्योगीकरण का महत्व ग्रामीण विकास के सन्दर्भ में बढ़ जाता है। साथ ही ग्रामीण विकास के बिना किसी भी राष्ट्र का समृद्धि एवं सम्पन्नता का लक्ष्य अधूरा होगा। भारत जैसे ग्राम्य-प्रधान देश के लिए इसका महत्व और अधिक बढ़ जाता है। ग्रामीण औद्योगीकरण न केवल रोजगार के अवसर उत्पन्न कर ग्रामीण जनशक्ति को उत्पादक एवं रचनात्मक कार्यों में लगाता है अपितु शहर की ओर उन्मुख भीड़ को गांवों में ही रोक कर शहर के बढ़ते अनियन्त्रित जनाधिक्य की समस्याओं के भी समाधान में सहायक होता है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् गांवों की काफी प्रगति हुई। परन्तु शहरों की तुलना में गांव इतने पिछड़ गये कि उनमें भारी असन्तुलन पैदा हो गया है। इस बढ़ती खाई को पाटने के प्रयास विशेष रूप से पिछली दो योजनाओं में किये गये परन्तु अभी बहुत कुछ शेष है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सन्तुलन को बनाए रखने वाले परम्परागत पेशे और धन्धे अलाभकारी होने के कारण अपना महत्व खोते जा रहे हैं। ऐसे धन्धों में लगे बढ़ई, लुहार, कुम्हार, धोबी, नाई, बुनकर आदि गांव छोड़कर नये पेशे और नौकरी की तलाश में शहर की ओर जाने लगे हैं। इन पेशों के बिखराव का प्रभाव कृषि के साथ ही सम्पूर्ण ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर पड़ा है। अधिक लाभ की

आशा में इनके शहर की ओर पलायन से गांव वालों को लाभ न मिलकर शहर के लोगों को मिलता है। यही नहीं इसमें शहर की नवीन समस्याएं भी बढ़ी हैं। इन समस्याओं के कारणों पर योजनाकारों को ध्यान देने की आवश्यकता है।

अतः ग्रामीण विकास में तेजी लाने तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था को उक्त संकट से उबारने के लिए ग्रामीण औद्योगीकरण में तेजी लाना एकमात्र विकल्प लगता है। क्योंकि ऐसे उद्योग गांवों में सीमित पूंजी, सीमित स्थान और सीमित प्रबन्धकीय कौशल द्वारा स्थापित किये जा सकते हैं। इन उद्योगों में वस्तुओं का उत्पादन स्थानीय तौर पर उपलब्ध संसाधनों एवं कच्चे माल के उपयोग से होता है। इनसे प्रदूषण भी कम से कम होता है। ये उद्योग जटिलता रहित मशीनी उपकरणों द्वारा उत्पादन में अभिवृद्धि के साथ ही ग्रामीण पारम्परिक कला कुशलता को भी जीवन्त बनाए रखने में सहयोग करते हैं।

ग्रामीण एवं लघु उद्योग एवं उत्पादित वस्तुएं

औद्योगिक नीति के अनुसार— "लघु उद्योग देश में उत्पादन में लगे हुए वे उपक्रम हैं जिनके संयन्त्र एवं पूंजी में स्थिर परिसम्पत्तियों के रूप में 60 लाख रुपये तक की पूंजी का निवेश किया जा सकता है। परन्तु लघु इकाइयों के सम्बन्ध में निवेश सीमा 5 लाख रुपये है।

भारत में 500 से अधिक वस्तुओं का उत्पादन लघु क्षेत्र में किया जाता है। चमड़ा, चमड़े की बनी वस्तुएं, साइकिल एवं उसके उपकरण, प्लास्टिक, स्टेशनरी, साबुन, दन्त मन्जन, रबड़ की वस्तुएं, लोहे और लकड़ी के फर्नीचर, जूते की पालिश, पेन्ट तथा वार्निश, टार्च, लुंगी, गमछे आदि सामूहिक उपयोग की वस्तुएं घरेलू उद्योगों द्वारा उत्पादित होती हैं। ऐसे ही लघु औद्योगिक इकाइयों द्वारा रेडियो, टेलीविजन, बल्ब एवं ट्यूब लाइट आदि इलेक्ट्रानिक वस्तुएं तथा वैज्ञानिक प्रयोगशाला एवं खेल इत्यादि से सम्बन्धित वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है।

नयी औद्योगिक नीति

नयी औद्योगिक नीति के अन्तर्गत केन्द्र सरकार ने बढ़ती हुई बेरोजगारी को कम करने के लिए औद्योगिक नीति में सुधार किया है। लघु उद्योगों के लिए सरकार ने पन्जीकरण की व्यवस्था ही समाप्त कर दी है। इसके पीछे यह मन्शा साफ झलकती है कि लघु उद्योगों के पंजीकरण की पेचीदगियों एवं लालफीताशाही से इस नवीन व्यवस्था से छुटकारा मिलेगा। इससे नवीन उद्योगों की स्थापना में बैंकों से ऋण इत्यादि की सरल सुविधाएं भी प्रदान करने की बात मानी गयी है।

समस्याएं एवं सुझाव

उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण से यह स्पष्ट लगता है कि गांवों में बढ़ती जनसंख्या एवं बेरोजगारी तथा पूंजी विनियोग में कमी को देखते हुए अनेक ग्रामीण समस्याओं से निपटने एवं ग्रामीण विकास के प्रोत्साहन एवं स्थापना में केन्द्र सरकार की वर्तमान औद्योगिक उदारीकरण की नीति प्रमुख सहायक हो सकती है। इसके पूर्व भी लघु एवं ग्रामीण उद्योगों की समस्याओं के निराकरण के अनेक सरकारी प्रयास किये गये हैं। उदाहरण के लिये लघु उद्योगों की सबसे बड़ी समस्या यह थी कि बड़े कारखानों की उत्पादित वस्तुओं की तुलना में लघु औद्योगिक इकाइयों द्वारा तैयार वस्तुओं की गुणवत्ता कम होती है तथा लागत भी अधिक लगती है। इस समस्या के निराकरण के लिए सरकार समय-समय पर लघु औद्योगिक इकाइयों को संरक्षित करती है।

लघु एवं छोटी औद्योगिक इकाइयों की सामान्य समस्या यह है कि उन्हें कच्चे माल और आवश्यक उपकरणों के क्रय तथा पुराने पड़े उपकरणों के स्थानान्तरण के लिए विर्नाय समस्या होती है जिससे वे बीमार स्थिति में कभी-कभी बन्द भी हो जाती हैं। नयी औद्योगिक नीति में इस समस्या से निपटने के लिए व्यवस्था होनी चाहिए।

छोटे और ग्रामीण उद्योगों के सम्बन्ध में दो प्रश्न प्रथम यह कि इन उद्योगों के स्थापन में कितने ग्रामीण जन लगे हुए हैं। क्या इनके संचालन में मिलने वाली आर्थिक छूट इत्यादि का लाभ उठाकर शहरी सम्पन्न वर्ग तो इनमें नहीं घुस गया है ? यदि ऐसा है तो इससे ग्रामीण बेरोजगार कितने लाभान्वित होंगे। दूसरी बात यह कि गांवों का गरीब और बेरोजगार युवक इन लघु इकाइयों के स्थापन में ऋण के अतिरिक्त स्वयं किए जाने वाले व्यय एवं आवश्यक संसाधनों को कितना जुटा पायेगा। यह कह पाना कठिन है कि उक्त प्रश्नों एवं समस्याओं का कितना हल इस उदारीकृत औद्योगिक नीति द्वारा हो पायेगा। परन्तु इतना अवश्य कह सकते हैं कि इन समस्याओं का जितना निदान इस नीति के कार्यान्वयन में हो पायेगा उतना ही ग्रामीण विकास गतिमान हो सकेगा।

32 अध्यापक निवास
काशी विद्यापीठ, वाराणसी

ग्राम उद्योग - कैसे पनप सकते हैं ?

□ वेद प्रकाश अरोड़ा □

हमारी सातवीं योजना 31 मार्च 1990 को समाप्त हो गई थी। कायदे से आठवीं योजना उसके तुरंत बाद एक अप्रैल 1990 से शुरु हो जानी चाहिये थी। लेकिन किन्हीं अपरिहार्य कारणों से यह आरम्भ नहीं हो सकी। परन्तु अब राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा आठवीं योजना 1992-97 के निर्देश पत्र को स्वीकृति मिल चुकी है जो 1 अप्रैल 1992 से लागू हो गई है। आठवीं योजना में 5.6 प्रतिशत विकास दर प्राप्त करने के लिए साधन जुटाने के नए तौर-तरीके अपनाये जायेंगे, करों का दायरा बढ़ाया जायेगा, और भुगतान संतुलन को सुधारा जायेगा, सार्वजनिक क्षेत्र की कार्य कुशलता और दक्षता में वृद्धि की जायेगी तथा गैर-योजना खर्च घटाया जायेगा। इन कार्यों के लिए और बातों के साथ-साथ आंतरिक साधनों से पूंजीनिवेश प्रोत्साहित किया जायेगा तथा विज्ञान और टैक्नोलोजी को उन्नत बनाया जायेगा। साथ ही आधुनिकीकरण और प्रतियोगी दक्षता को बढ़ावा देकर भारतीय अर्थव्यवस्था को अंतराष्ट्रीय क्षेत्र में होड़ लेने लायक बनाया जायेगा तथा उसे विश्व की मुख्य आर्थिक धारा से जोड़ा जायेगा।

रोजगार के नए अवसर

ये सब कदम उठाते हुए आठवीं योजना में रोजगार के नए नए और समुचित अवसर बढ़ाने, जनसंख्या वृद्धि पर अंकुश लगाने, प्राथमिक शिक्षा की परिधि में सभी को लाने, पीने के पानी की व्यवस्था करने, कृषि का विकास करने और उसमें विविधता लाने तथा बुनियादी ढांचे को मजबूत करने की प्राथमिकता दी गई है। इसमें भी रोजगार के अवसर बढ़ाने के काम को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है। इससे जहां गरीबी कम होगी, वहां सामाजिक सुरक्षा का आधार भी पक्का पुख्ता और व्यापक होगा। आठवीं योजना के दौरान मजदूरों की संख्या 2.2 प्रतिशत की दर से बढ़ने का अनुमान है जबकि पूंजी निवेश और उत्पादन के परिकल्पित कार्यक्रमों के अनुसार रोजगार क्षमता से 2.8 प्रतिशत का विस्तार होगा। इस वृद्धि का मतलब यह है कि आठवीं योजना के पूर्वार्ध में प्रतिवर्ष 90 लाख और उत्तरार्ध में प्रतिवर्ष लगभग एक करोड़ नई नौकरियां पैदा हो सकेंगी। दूसरे शब्दों में एक दशक में दस करोड़ नौकरियां देने का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकेगा। कृषि के विस्तार, फसलों की बुआई के लिए परती भूमि के विकास और गांवों में वन लगाने तथा स्वयं खेती से रोजगार मिलने की काफी संभावनाएं हैं। लेकिन हमारी खेती पर अधिकांशत: इंद्र देवता की सतत अनुकम्पा न रहने से रोजगार के मामले में अनिश्चितता बनी रहती है। वैसे भी देहाती इलाकों में तेजी से बढ़ती आबादी के कारण कृषि से सभी गांव वालों को रोजीरोटी न मिल सकने से वहां बेरोजगारी का प्रकोप बना रहता है। यही वजह है वहां से शहरों को पलायन एक आम बात हो गई है। इस पलायन को रोकने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नए रास्ते खोजने होंगे। ये रास्ते छोटे ग्राम उद्योगों, कुटीर उद्योगों और छोटे उद्योगों के विस्तार से मिल सकते हैं। हमारी नई योजना में और वैसे भी संसद के अंदर और बाहर काम के अधिकार की काफी चर्चा हुई है। लेकिन इस अधिकार को तभी साकार किया जा सकेगा जब लोगों के पास कोई रोजगार अथवा धंधा हो। गांवों में अपनी झोपड़ियों या बाहर छोटे उद्योगों में काम मिलता रहे तो न सिर्फ स्वरोजगार, बिल्कुल स्वदेशी और स्वावलंबन की समस्या का भी समाधान हो जायेगा। इस संबंध में ग्रामोद्योगों, छोटे उद्योगों, खादी उद्योगों तथा हस्तशिल्पों के विस्तार के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। कभी हमारी दस्तकारियों की गुणवत्ता की विश्वभर में धूम मची रहती थी। इनसे रोजगार के पर्याप्त अवसर भी उपलब्ध होते हैं। इसी कारण गांधीजी खादी एवं ग्रामोद्योगों की जबरदस्त वकालत किया करते थे। चर्खा उनकी इसी वकालत का प्रतीक था। जवाहरलाल नेहरू भी बड़े उद्योगों के पक्षधर होने के बावजूद, कुटीर, लघु और ग्रामोद्योगों को भी राष्ट्र के स्वरूप को निखारने के लिए आवश्यक मानते थे। उनका सामुदायिक विकास कार्यक्रम ग्रामीण विकास कार्यक्रम का ही पर्याय था।

ग्रामोद्योगों का संजाल

खादी और ग्रामोद्योग आयोग के अनुसार ग्रामोद्योग उसे माना जाता है जिसमें मशीनों, भूमि और भवन आदि में 15 हजार रुपये से अधिक पूंजी न लगी हो। दूसरे जिस ग्राम क्षेत्र की आबादी लगभग दस हजार तक हो, उसमें ही उद्योग खोले जाने चाहिए।

इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए आयोग, ग्रामोद्योगों की स्थापित करता है। यह आयोग विभिन्न राज्यों में 28 खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड स्थापित कर चुका है। इस अनूठे संगठन ने देश में दो लाख से अधिक गांवों में अपना ताना बाना बुना है और लगभग 50 लाख व्यक्तियों को रोजगार प्रदान कर रहा है। इतना ही नहीं, खादी और ग्रामोद्योगों के उत्पादन में भी काफी वृद्धि हुई है। आयोग ने 1989-90 में लगभग एक लाख शिल्पकारों और दस्तकारों के रोजगार के जुगाड़ के लिए लगभग साढ़े 21 करोड़ रुपये मंजूर किये। आयोग बेंत तथा बांस की टोकरियां बनाने, अगरबत्तियां और ताड़गुड़ तैयार करने, कुम्हारी, लोहारगिरी तथा दालों व अनाजों की सफाई में लगे लोगों की आर्थिक सहायता करते समय यह देखता है कि यह सहायता समाज के कमज़ोर और पिछड़े वर्गों को हर सूरत में मिले। इधर आयोग ने अपने कार्यक्षेत्र का भी विस्तार किया है। पहले उसने ग्रामोद्योगों को मुख्य रूप से सात श्रेणियों में बांट रखा था। तब इन उद्योगों की संख्या 26 थी। लेकिन 1989 में इनमें 34 नए उद्योग जोड़ दिए गए। जिनमें इंजीनियरी और इलैक्ट्रानिक उद्योग भी सम्मिलित हैं। बाद में 36 अन्य ग्रामोद्योग भी इस सूची में जोड़कर जगह-जगह ग्रामोद्योगों का व्यापक जाल बिछा देने का कार्यक्रम है।

हथकरघा उद्योग

कृषि के बाद हथकरघा उद्योग में सबसे अधिक व्यक्तियों को रोजगार मिलता है। इसलिए सरकार इस उद्योग के चंहुमुखी विकास के लिए विभिन्न विभागों के सामान की खरीद अकाश संगठन से करती है। अकाश हथकरघा निगमों और शीर्षस्थ संस्थाओं का संगठन है जो कपड़ा मंत्रालय के हथकरघा विकास आयुक्त कार्यालय के अंतर्गत काम करता है। वह बुनकरों के उत्पादों को प्राथमिकता देता है। यह संगठन हथकरघों पर तैयार वस्तुएं सरकारी विभागों, सरकारी उधमों, अस्पतालों और सशस्त्र सेनाओं को बेचता है। उसे 1991-92 में 8 करोड़ 30 लाख रुपये के आर्डर प्राप्त हुए। वर्तमान वित्त वर्ष में रेलवे बोर्ड ने हथकरघा क्षेत्र से वर्दी का 70 लाख रुपये का कपड़ा खरीदने का आर्डर दिया है। इसी तरह गृह मंत्रालय ने 70 लाख रुपये की दरियां खरीदने के आर्डर दिए हैं।

लेकिन ग्रामोद्योगो, लघु उद्योगों और घरेलू उद्योगों का विस्तार करते हुए हमें यह देखना होगा कि वह हमेशा परमुखापेक्षी न रहें। अपने साधनों का पूरा सदुपयोग कर अपने पांव पर खड़े हों तथा उनमें कामगारों की हालत में सुधार हो। इधर देखा गया है कि कहीं पूंजी के अभाव, कहीं प्रबंध में खामियों, कहीं मजदूर असंतोष, तथा कहीं माल के घटिया होने कारणों से देश में कुल पंजीकृत 25 लाख छोटी औद्योगिक इकाइयों में से दो लाख से अधिक यानी 2,18,000 इकाइयां रूग्ण थीं। इन रूग्ण इकाइयों में से लगभग आधी बंद कर देनी पड़ी, जबकि इन इकाइयों में 24 अरब रुपये की विशाल पूंजी लगी थी। इसमें से कुछ भी रकम न तो कर्मचारियों, न बैंक मालिकों और न प्रबंधकों को ही मिल सकी। सरकारी क्षेत्र में भी 58 इकाइयां रूग्णावस्था में हैं। लेकिन छोटे और घरेलू उद्योगों में रूग्णता की संभावनाएं कम रहती हैं। इसके कुछ कारण हैं जैसे अनेक घरेलू और कुटीर उद्योगों के लिए किराए पर जगह लेने की बजाए उन्हें अपने ही घरों में अथवा खेतों में चलाया जा सकता है। इनमें मजदूर-मालिकों के झगड़े भी नहीं होते। जो मजदूर हैं वे सभी घर के सदस्य हैं। वे अपने घर में खाने से पहले अथवा बाद में अर्थात सबेरे, दोपहर अथवा शाम को जब चाहें काम को अपनी सुविधा के अनुसार करते हैं। वहां मजदूरी भी सस्ती होती है। हस्तशिल्पों और ग्राम उद्योगों में कम पूंजी से ज्यादा व्यक्तियों को काम पर लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए ग्राम उद्योगों में एक करोड़ रुपये के पूंजी निवेश से 202 व्यक्तियों के लिए रोजगार की व्यवस्था हो सकती है जबकि संगठित औद्योगिक क्षेत्र में इतने ही पूंजीनिवेश से मुश्किल से 40 व्यक्तियों को ही रोजगार मिल सकता है। यहां यह भी उल्लेखनीय है हमारी निर्यात-कमाई का 40 प्रतिशत से अधिक इन्हीं छोटे नन्हें अथवा घरेलू उद्योगों और दस्तकारियों से मिलता है।

अपेक्षाएं

तो भी इस समूचे क्षेत्र को सुदृढ़ करने के लिए अभी बहुत कुछ किए जाने की गुंजाइश है। ग्राम और कुटीर उद्योगों तथा हस्तशिल्पों के हितों की रक्षा के लिए एक अलग मंत्रालय बनाना बेहतर होगा। स्थानीय दस्तकारों और कारीगरों जैसे बुनकरों, सुनारों, लोहारों, बढ़इयों, जूते बनाने वालों और कुम्हारों की साफ सुथरे मकानों, पानी वाले शौचालयों तथा औजारों आदि की बुनियादी जरूरतें पूरी की जानी चाहिए। भारतीय कारीगरों को अपने उत्पादों के उचित मूल्य दिलाने के लिए परिशोधन इकाइयों, हाट सुविधाओं, और विपणन परामर्श की व्यवस्था होनी चाहिए। देसी दस्तकारियों को सुरक्षित रखने तथा विकसित करने के लिए दस्तकारी विकास बैंक बनाया जाना चाहिए जिसके लिए आरंभिक पूंजी सरकार की ओर से दी

जाये। कुटीर उद्योगों में महिलाओं तथा अनुसूचित जातियों और जनजातियों की महत्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए उनकी ओर विशेष ध्याने देने से उत्पादन में चमत्कारी वृद्धि होगी। इतना ही नहीं, छोटे नन्हें और कुटीर उद्योगों-सभी बिना भय के पूरे परिश्रम से काम कर उत्पादन में चार चांद लगा सकते हैं। परीक्षण और गुणवत्ता नियंत्रण की सेवाएं भी समान रूप से उपलब्ध कराई जानी चाहिए। उन्हें प्रोत्साहन देने के लिए कम ब्याज पर काम चलाऊ पूंजी दी जानी चाहिए तथा बिक्री कर एक ही जगह वसूल किया जाना चाहिए।

पक्की सड़कें

एक और बात। ग्राम उद्योगों की इस असुविधा को भी दूर करना निहायत जरूरी है कि अगर उन्हें स्थानीय रूप से कच्चा माल उपलब्ध न हो, तो वह उन्हें बाहर से समय पर मिल जाए। साथ ही उनके अपने तैयार माल को बिक्री के लिए बाजार तक पहुंचाने में कोई बाधा न हो। इसके लिए आवश्यक है कि गांवों में पक्की सड़कें बनाई जाएं और अगर किसी गांव में पक्की सड़क न हो, तो कम से कम गांवों को बड़ी सड़कों से मिलाने वाली सम्पर्क सड़कें बनाई जाएं। सड़कें, यातायात की धमनियां होती हैं। एक अनुमान के अनुसार इस समय 2,21,200 किलोमीटर सड़कें ग्रामीण क्षेत्रों में बनाने की जरूरत है। देश के 6 लाख गांवों में से 30 प्रतिशत से अधिक गांवों में कोई सड़क सम्पर्क नहीं है। अन्यत्र जो ग्रामीण सड़कें बनी हुई हैं, उनमें से भी लगभग 70 प्रतिशत बारहमासी सड़कें नहीं हैं और गरीब के हाथ की भाग्य रेखाओं की तरह कटीफटी रहती हैं। इन्हें जल्दी ठीक करने के लिए अब सरकार ने केंद्रीय सड़क कोष को सड़क मरम्मत कोष में बदल दिया है। उत्तर राज्य सरकारों से भी आग्रह किया गया है कि वे जवाहर रोजगार योजना जैसे विभिन्न ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के अंतर्गत उपलब्ध राशि से देहाती सड़कों में सुधार करें। ग्राम पंचायतें सहायता राशि मिलने पर सड़कें बनाने-संवारने का काम प्राथमिकता के आधार पर हाथ में ले सकती हैं। आठवीं योजना में यह देखना होगा कि जिस तरह ये सड़कें गांवों को कस्बों और शहरों से जोड़ती हैं, वैसे ही कृषि और उद्योग की परस्पर दूरी, कृषि जिन्स परिशोधन उद्योगों की अधिकाधिक स्थापना से दूर करनी होगी। ऐसे ही देहाती और शहरी लोगों के बीच का फासला और कृत्रिम विभाजन दूर करना होगा तथा इसी तरह ग्रामोद्योगों में उन्नत वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय विधियों से नया रंग, और नया प्राण भरना होगा, तभी ये ग्रामोद्योग नए जमाने के साथ चलते हुए उपलब्धियों की नई-नई बुलंदियों को छूते चले जायेंगे।

268 सत्यनिकेतन, मोती बाग,
नानकपुरा, नई दिल्ली-110021

राजस्थान

ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का योगदान

□ धर्मपाल जांगिड □

□ भुवनेश गुप्ता □

राजस्थान में ग्रामीण बैंकों की स्थापना सर्वप्रथम 2 अक्तूबर, 1975 को जयपुर नागौर आंचलिक ग्रामीण बैंक के रूप में हुई। इस बैंक का कार्यक्षेत्र राज्य के जयपुर तथा नागौर दोनों जिले रखा गया। राजस्थान में इन बैंकों की स्थापना के पीछे उद्देश्य ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का विकास व समाज के कमजोर, वर्गों की उत्पादन व वितरण संबंधी आवश्यकताओं के लिये ऋण देना, संबंधित क्षेत्र के ही कर्मचारियों की नियुक्ति करना, सुगम व आसान पद्धति द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में शीर्ष बैंकिंग सुविधायें प्रदान करना, ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण सुविधाओं की कमी को दूर करना आदि प्रमुख हैं।

ग्रामीण बैंकों का कार्य-क्षेत्र प्रायः एक या दो जिलों तक ही सीमित है, तथा ये छोटे किसानों, ग्रामीण दस्तकारों, कारीगरों तथा सामान्य वर्ग के व्यापारियों एवं उत्पादकों के लिये ऋण की व्यवस्था करते हैं। इन बैंकों द्वारा दिये गये ऋण पर कम ब्याज लिया जाता है जो सहकारी समितियाँ द्वारा वसूल किये गये ब्याज दर से अधिक नहीं है।

इन बैंकों की कार्य-प्रणाली बहुत सरल है, अधिकांश लेनदेन का लेखा-जोखा स्थानीय भाषा में किया जाता है। इन बैंकों के ग्राहकों को फार्म आदि भरने में बैंक कर्मचारियों द्वारा सहायता देने का प्रावधान किया गया है।

ग्रामीण बैंकों के स्वयं के इतने कोष नहीं होते कि वे ग्रामीण वित्तीय आवश्यकता की पूर्ति कर सकें। इसके लिये इन बैंकों को राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) तथा प्रायोजित बैंक से पुनर्वित की सुविधा उपलब्ध कराई जाती है। 1988-89 वर्ष के दौरान (जून, 1989 तक) नाबार्ड ने देश के 164 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको को 379.02 करोड़ रुपये के अल्पावधि ऋण सीमायें मंजूर की हैं।

वर्तमान में राज्य में कुल 14 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक कार्य कर रहे हैं जो राज्य के सभी जिलों के ग्रामीण क्षेत्र के लोगों को अपनी सेवायें प्रदान कर रहे हैं। राज्य में इन 14 ग्रामीण बैंकों की शाखाओं का विस्तार 1986, 1988 तथा 1990 के वर्षों में हुआ है।

तालिका संख्या 1.1

राजस्थान में निम्नलिखित क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक हैं।

1. अलवर-भरतपुर ग्रामीण बैंक
2. अरावली आंचलिक ग्रामीण बैंक
3. भीलवाड़ा अजमेर ग्रामीण बैंक
4. बीकानेर आंचलिक ग्रामीण बैंक
5. बूंदी, चित्तौड़ ग्रामीण बैंक
6. हाड़ौती ग्रामीण बैंक
7. जयपुर-नागौर आचंलिक ग्रामीण बैंक
8. मरुधर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक
9. मारवाड़ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक
10. मेवाड़ आंचलिक ग्रामीण बैंक
11. शेखावाटी क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक
12. श्री गंगानगर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक
13. थार आंचलिक ग्रामीण बैंक
14. डुंगरपुर बासवाड़ा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक

स्रोत: एस.एल.बी.सी. रिपोर्टस, 1986-90, बैंक आफ बड़ौदा, जयपुर।

वर्ष 1986 में बैंकों की कुल शाखायें 893 थीं जो बढ़कर वर्ष 1990 में 1070 हो गई अर्थात 1986 से 1990 की अवधि में 177 शाखाओं की वृद्धि हुई है। प्रायः सभी 14 क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों की शाखाओं में वृद्धि हुई है।

राजस्थान में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की प्रगति का विश्लेषण विभिन्न

शीर्षकों में निम्न तालिका के आधार पर किया गया है :—

तालिका 1.2

राजस्थान में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की प्रगति

(राशि करोड़ रुपयों में)

मद	1986	1988	1990
1. कुल जमायें	96.26	176.96	239.08
2. कुल अग्रिम	110.39	162.27	199.03
3. प्राथमिक क्षेत्रों को अग्रिम	104.87	150.87	181.00
4. कृषि ऋण	77.23	106.17	125.95
5. ग्रामीण लघु व कुटीर उद्योगों को ऋण	9.33	19.20	27.92
6. अन्य प्राथमिक क्षेत्रों को ऋण	19.01	30.31	36.94

स्रोत: एस.एल.बी.सी. रिपोर्टस 1986-90 बैंक आफ बड़ौदा, जयपुर।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की कुल जमाओं तथा कुल अग्रिमों में निरंतर वृद्धि हुई है। कुल जमायें जो वर्ष 1986 में 96.26 करोड़ रुपये थी बढ़कर 1990 में 239.08 करोड़ रुपये हो गई है। उसी अवधि में कुल अग्रिम भी क्रमशः 110.39 व 199.03 करोड़ रुपये रहे। प्राथमिक क्षेत्रों को अग्रिम जो वर्ष 1986 में 104.87 करोड़ रुपये उपलब्ध करवाया गया था, 1990 में बढ़कर 181.00 करोड़ रुपये हो गया यानि इस अवधि में 76.13 करोड़ रुपये की बढ़ोत्तरी हुई। कृषि ऋणों ग्रामीण लघु व कुटीर उद्योगों को ऋण तथा अन्य प्राथमिक क्षेत्रों के ऋणों में भी सराहनीय वृद्धि हुई है। कृषि ऋणों में वर्ष 1986 से 1990 की अवधि में लगभग 38 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है।

कृषि ग्रामीण ऋण राहत योजना-1990

भारत सरकार ने नवम्बर 1989 में घोषणा की थी कि किसानों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये उनके 10,000 रुपये तक के ऋण माफ किये जायेंगे। इस घोषणा का क्रियान्वयन राजस्थान सरकार ने भी किया। घोषणा के अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों, सहकारी बैंकों तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों से लिये गये 10,000 रुपये तक के ऋण माफ किये गये।

राजस्थान के क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा लगभग 7553.30 लाख रुपये के ऋण माफ किये गये, जिससे निश्चित रूप से ग्रामीण तबके के निर्धन लोगों को फायदा पहुंचा है। मारवाड़ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक ने पाली जिले के कृषकों को राहत दी है जो लगभग 1402.17 लाख रुपये है। इसी तरह जयपुर- नागौर ग्रामीण बैंक ने जयपुर जिले के किसानों को 849.00 लाख रुपये तथा नागौर जिले के किसानों को 1170.00 लाख रुपये ऋण राहत प्रदान किये हैं।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की समीक्षा

जिन परिस्थितियों में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गई थी, उस समय राज्य की ग्रामीण अर्थव्यवस्था एकदम पिछड़ी हुई थी, लोगों के पास आर्थिक साधनों की कमी थी, रोजगार का अभाव था, बैंकिंग के प्रति लोगों में जागरूकता की कमी थी, लोगों का जीवन स्तर नीचा था अर्थात राज्य की प्रति व्यक्ति आय देश के अन्य राज्यों से बहुत कम थी क्योंकि एक तरफ हर साल पड़ने वाला अकाल तथा दूसरी तरफ राज्य का फैलता विशाल रेगिस्तान इन सबके के कारण राजस्थान बहुत पिछड़ा हुआ राज्य माना जाता था। इन ग्रामीण बैंकों की स्थापना के बाद विशेषकर राजस्थान की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में एक नई आशा का संचार हुआ, लोगों को धंधे के लिये वित्त उपलब्ध कराया गया। कृषकों को कम ब्याज पर ऋण उपलब्ध कराये गये, ग्रामीण व लघु व कुटीर उद्योगों के विकास पर इन बैंकों द्वारा जोर दिया गया, विभिन्न प्रकार के ग्रामीण विकास कार्यक्रम,समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, 20 सूत्री कार्यक्रम, अनुसूचित जाति तथा जनजाति के परिवारों के लिये विकास कार्यक्रम, कमजोर वर्गों के विकास कार्यक्रम, डी०आर०आई० योजना के तहत् विकास कार्यक्रम आदि के संचालन में पर्याप्त वित्तीय सुविधा उपलब्ध करवाकर इन बैंकों ने राज्य की ग्रामीण अर्थव्यवस्था का नक्शा ही बदल दिया है।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की समस्यायें तथा सुझाव

राजस्थान में ग्रामीण बैंकों का प्रयोग सर्वथा नवीन एवं दार्शनिक है, इस प्रयोग को सफल बनाने के लिये ग्रामीण भावना व ग्रामीण दृष्टिकोण वाले व्यक्तियों को ही इनका संचालन भार दिया जाना चाहिये ताकि ये ग्रामीण क्षेत्र की जनता के लिये 'ग्रामीण दृष्टिकोण वाली साख' की व्यवस्था कर सकें।

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक प्रायः लघु व सीमान्त कृषकों, कारीगरों तथा दस्तकारों को केवल उत्पादक कार्यों के लिये ही ऋण उपलब्ध कराते हैं, जिससे उक्त श्रेणी के लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ण संतुष्टि नहीं होती है। गांवों में शादी-विवाह व चिकित्सा आदि के लिये ग्रामीण लोग आज भी महाजनों पर निर्भर रहते हैं। अतः ग्रामीण

बैंकों को गरीब ग्रामीण तबके के लोगों को अनुत्पादक ऋण भी उपलब्ध कराने चाहिये ताकि ये लोग सेठ-साहुकारों के चंगुल से मुक्ति पा सकें।

ग्रामीण बैंकों की महत्त्वपूर्ण समस्या अवधि पार ऋणों की भी है, इसके कारण बैंक के वित्तीय साधन इतने सीमित हो गये हैं कि वे गरीब तबके के ग्रामीण लोगों की ऋण आवश्यकताओं की पूर्ति में असफल हो रहे हैं।

इस समस्या के समाधान के लिये लोगों के विरूद्ध कड़ी कार्यवाही करनी चाहिये जैसे कुर्क आदेश जारी करना आदि। ऋण देते समय जमानत के रूप में किसी तरल सम्पत्ति का अधिकार बैंक को अपने पास सुरक्षित रखना चाहिये।

इन बैंकों की शाखाओं में वृद्धि के अनुरूप अनुभवी कर्मचारियों की उपलब्धि की भी समस्या है। अनुभवहीन कर्मचारी बैंकों को काफी झमेले में फंसा सकते हैं। वस्तुत: साख प्रदान करने संबंधी निर्णय अत्यन्त ही नाजुक होते हैं जिसके लिये अनुभवी कर्मचारियों की अत्यन्त आवश्यकता है। कर्मचारियों को नियुक्ति से पूर्व ट्रेनिंग देनी चाहिये। उनका प्रशिक्षण गांवों की वित्तीय समस्याओं से संबंधित होना चाहिये। इसके अतिरिक्त इन बैंकों में ग्रामीण क्षेत्रों से संबंधित कर्मचारी एवं अधिकारी नियुक्त करने चाहिये जो ग्रामीण क्षेत्र की समस्याओं से पूर्ण रुप से वाकिफ हों।

ग्रामीण बैंकों के संबंध में एक समस्या यह भी देखने में आई है कि बैंकों के कर्मचारी तथा अधिकारी इस बात से नाराज हैं कि उनका वेतन राष्ट्रीयकृत व्यापारिक बैंकों के कर्मचारियों एवं अधिकारियों के बराबर नहीं है जबकि उन्हें काम अधिक करना पड़ता है। इस बात के लिये पिछले कई वर्षों से इन बैंकों के कर्मचारी तथा अधिकारी समय-समय पर हड़ताल आदि भी करते आये हैं।

इस समस्या का समाधान यही है कि ग्रामीण बैंकों के स्टाफ आंदोलन को समाप्त करने के लिये न्यायसंगत वेतन नीति का पुनर्निधारण करना चाहिये ताकि बैंकों के कर्मचारी तथा अधिकारी अपने कार्य में रुचि ले सकें। इस बारे में हाल ही में सरकार ने 'राष्ट्रीय वेतन अवार्ड' लागू करने की घोषणा की है।

राजस्थान में अपेक्षा के अनुकूल बैंकों की शाखाओं का विस्तार नहीं हुआ है। राजस्थान के क्षेत्रफल, जनसंख्या व जिलों के हिसाब से क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की संख्या कम है, इससे बैंकों को अतिरिक्त भार पड़ता है। अत: शाखाओं के विस्तार के साथ-साथ कुछ नये क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक और खोलने चाहिये, जैसे—— जयपुर-नागौर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक की जगह दोनों जिलों के लिये अलग-अलग ग्रामीण बैंक खोलना। इसके अलावा इनकी शाखायें भी खोलनी चाहिये।

ब्याज दरों को भी अन्य बैंकों की तुलना में कम करना चाहिये। ऋण देने का तरीका आसान करने के साथ-साथ अनुदान की व्यवस्था भी करनी चाहिये।

इस प्रकार उपर्युक्त समस्याओं का निवारण करके क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को गरीबी उन्मूलन व ग्रामीण उत्थान हेतु प्रभावी रुप से प्रयोग में लाया जा सकता है। बैंकों को अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अभी बहुत लम्बी दूरी तय करनी है। सरकार का यह उत्तरदायित्व है कि वह इन बैंकों को आवश्यक संसाधन उपलब्ध करवाकर इनके विकास की गति को बनाये रखें ताकि राजस्थान जैसे पिछड़े हुये राज्य की ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में सुधार हो सके।

8 सी.वी. रमन होस्टल
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर-4
राजस्थान

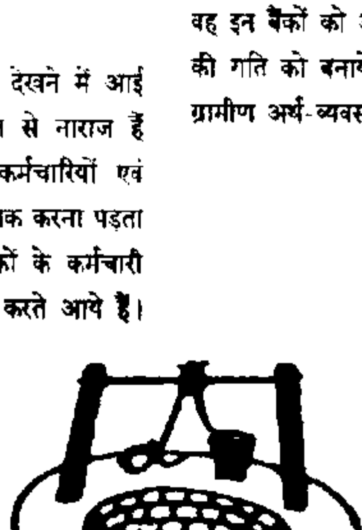

पर्यावरण रक्षण — बैंकों की सहायता से

□ इन्दु शेखर व्यास □

पृथ्वी पर जीवन की गति को सामान्य बनाये रखने के लिए इसके पर्यावरण की अनुकूलता परमावश्यक है। उसके अभाव में पृथ्वी पर जीवन का अस्तित्व सम्भव नहीं है। सौरमण्डल के दूसरे ग्रहों से अब तक प्राप्त जानकारी के अनुसार उचित वातावरण के अभाव में ही वहां जीव-जन्तु उत्पन्न नहीं होते। एक दृष्टि से देखा जाए तो हम पृथ्वीवासियों को ईश्वर ने यह विशेष उपहार दिया है, जिसकी हमारे स्वयं के हित के लिए रक्षा करना हमारा प्रमुख दायित्व है। परन्तु, मानव सभ्यता के विकास ने पर्यावरण को नकारात्मक रूप से यथेष्ट प्रभावित किया है। बढ़ते औद्योगीकरण, बढ़ती जनसंख्या तथा विभिन्न वाहनों से निकलने वाले विषैले धुएँ ने पर्यावरण को अत्याधिक हानि पहुंचाई है।

पर्यावरण-सन्तुलन को बनाए रखने के लिए वृक्ष सर्वाधिक आवश्यक हैं, क्योंकि इनमें श्वसन-क्रिया के साथ-साथ प्रकाश संश्लेषण की क्रिया भी होती है। वृक्ष प्रकाश संश्लेषण के समय ऑक्सीजन छोड़ते हैं तथा कार्बन डाईऑक्साइड ग्रहण करते हैं जब कि सामान्य जीव-जन्तु श्वास लेते समय ऑक्सीजन ग्रहण करते हैं तथा कार्बन डाईआक्साइड छोड़ते हैं। अर्थात जीवन के लिए सबसे आवश्यक गैस ऑक्सीजन हमें पेड़ों से प्राप्त होती है। लेकिन हमारी लालची मनोवृत्ति तथा धन लिप्सा की प्रवृत्ति ने हमें इस ओर से लापरवाह बना दिया है। पेड़ों के प्रति हमारे दायित्व को हम भूल चुके हैं। इसी कारण कई वर्ग किलोमीटर के वन समाप्त हो गये हैं। चारों ओर नंगी पहाड़ियाँ और बंजर भूमि ही नजर आती हैं । अत्याधिक खनन से वनस्पति नष्ट हो रही है। यही नहीं, पहाड़ी क्षेत्र में हुए अत्याधिक भूक्षरण से भूमि की उर्वरा शक्ति कम हुई है, कई झीलें उथली हो गई हैं तथा जल प्रदूषण भी बढ़ा है जिससे विभिन्न क्षेत्रों में पानी की समस्या पैदा हुई है।

पिछले कुछ समय से हमारे देश की सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है। कई सरकारी विभागों को वृक्षारोपण के कार्य में लगाया गया है। विभिन्न क्षेत्र में कार्य कर रही सामाजिक संस्थाओं ने भी इस क्षेत्र में अपना योगदान देना प्रारम्भ किया है। विश्व बैंक से भी इस सम्बन्ध में आर्थिक सहायता प्राप्त की गई है। हमारे देश की प्रमुख वित्तीय संस्था ''बैंक'' भी इस क्षेत्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक द्वारा इस क्षेत्र के लिए एक उपयोगी योजना तैयार की गई है। इस योजना के अन्तर्गत विभिन्न राष्ट्रीयकृत, निजी तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा फलोद्यान, बागानों तथा बंजर भूमि विकास के लिये ऋण उपलब्ध कराया जाता है । इस योजना के कई लाभ हैं । इससे ऋण प्राप्तकर्ता को आर्थिक लाभ पहुँचता है, देश का उत्पादन बढ़ता है तथा साथ ही पर्यावरण की सुरक्षा भी सुनिश्चित होती है।

इस योजना के अन्तर्गत फलदार वृक्षों, जैसे— आम, चीकू, नारंगी, अमरूद, पपीता इत्यादि के लिए ऋण उपलब्ध कराया जाता है। यही नहीं बंजर भूमि के विकास के लिए अन्य उपयोगी वृक्षों, जैसे — विलायती बबूल, नीम, बेर इत्यादि के लिए ऋण उपलब्ध कराया जाता है। पेड़ों की खरीद से लेकर फल आने तक की प्रक्रिया में जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है उन सभी के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। मुख्य रूप से जिन उद्देश्यों के लिए ऋण दिया जाता है वे निम्न लिखित हैं—

(1) जमीन का समतलीकरण तथा वृक्ष उगाने के लिए जमीन की प्रारम्भिक तैयारी करना।

(2) गड्ढे खुदाना।

(3) प्रारम्भिक देशी खाद, अन्य उर्वरक तथा कीटनाशक खरीदना।

(4) बीज अथवा पौधे खरीदना।

(5) पानी तथा सिंचाई करना।

(6) अन्य विभिन्न कार्यों के लिए मजदूरी।

गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन कर रहे चयनित परिवारों को नियमानुसार अनुदान भी दिया जाता है। हर प्रकार के वृक्ष के लिए क्षेत्रवार प्रति एकड़ इकाई लागत निर्धारित की गई है। उसी के अनुसार ऋण उपलब्ध कराया जाता है। गांवों में कृषि क्षेत्र में कार्यरत जो लोग अर्द्ध बेरोजगारी की समस्या से ग्रस्त हैं उनके लिए यह सबसे उपयोगी योजना है। अपने खाली समय का सदुपयोग वे इसके

माध्यम से कर सकते हैं तथा आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

फलोद्यान, बागानों तथा बंजर भूमि के विकास के लिए दिये गये ऋण की अदायगी की अवधि तथा किश्तें इस प्रकार निर्धारित की जाती हैं कि उगाये गये वृक्षों से प्राप्त उत्पादन के द्वारा सरलता से ऋण अदा किया जा सके। यदि किसी व्यक्ति के पास वृक्ष उगाने के लिए जमीन उपलब्ध न हो तो सरकार से लीज पर कुछ वर्षों के लिए जमीन प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार प्राप्त जमीन पर भी बैंक ऋण उपलब्ध करा देते हैं। विभिन्न वृक्षों के लिए प्राप्त ऋण राशि की अदायगी कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक द्वारा वर्तमान में इस प्रकार निर्धारित की गई है—

क्र. स.	वृक्ष के प्रकार	पुनर्भरण अवधि (वर्षों में)	ऋण किश्त	प्रारम्भिक छूट अवधि (वर्षों में)
1.	काजू	12 से 15	वार्षिक	6 से 7
2.	आम	12 से 15	वार्षिक	6 से 7
3.	नींबू	10 से 15	वार्षिक	5
4.	अमरूद	10 से 15	वार्षिक	4 से 5
5.	चीकू	10 से 15	वार्षिक	5 से 6
6.	बेर	10 से 15	वार्षिक	4 से 5
7.	बिजोरा	10 से 15	वार्षिक	4 से 5

आज पूरे विश्व समुदाय के साथ हम भी पर्यावरण की समस्या से ग्रस्त हैं। ऐसी स्थिति में हमारा यह सदैव प्रयास रहना चाहिए कि यह समस्या इतनी जटिल न हो जाए कि इसका सुलझना असम्भव हो जाए। पर्यावरण के अस्तित्व के साथ हमारा अस्तित्व जुड़ा है, इसलिए इसकी रक्षा करना हमारे अस्तित्व की रक्षा करने के बराबर है। इस योजना से अधिक से अधिक लाभ उठाया जाना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्र में इस योजनान्तर्गत विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए तथा उन्हें ऋण उपलब्ध कराया जाना चाहिए जिससे उनका आर्थिक विकास हो सके, देश का उत्पादन बढ सके तथा पर्यावरण की रक्षा हो सके।

रुक्मिणी मंगलम्,
432 टीचर्स कॉलोनी,
अम्बामाता स्कीम,
उदयपुर 313003
राजस्थान

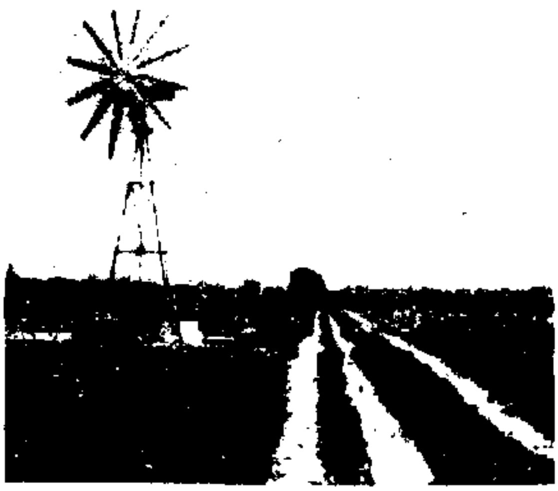

कहानी

शिक्षा का महत्व

□ माया देवी □

मुखिया के कानों में चेतन की भावना की भनक पड़ी तो वह बड़ा परेशान हुआ। सारे गांव में चेतन की जमीन का टुकड़ा सबसे अधिक उपजाऊ था। कई वर्षों से मुखिया की नजर उस जमीन के टुकड़े पर लगी थी।

चेतन जब आठवीं में पढ़ता था तो उस समय खेत से घर आ रहे उसके माता-पिता एक ट्रक की चपेट में आ गये थे। उस दिन से खेत और चेतन का जिम्मा मुखिया ने अपने ऊपर ले लिया था। चेतन को मुखिया ने बी.ए. तक पढ़ाया। पूरा गांव मुखिया की प्रशंसा करने लगा। लेकिन चेतन को इतना पढ़ाने का मुखिया का मकसद कुछ और ही था। वह जानता था कि पढ़ने के बाद चेतन शहर में रहकर नौकरी करेगा और उसका खेत सदा-सदा के लिए मेरे पास ही रहेगा। लेकिन जब मालूम हुआ कि चेतन नौकरी के पक्ष में नहीं है तो मुखिया के मन में हलचल होने लगी।

''चेतन, पढ़ाई तो तुम्हारी हो चुकी। अब मैं चाहता हूं कि नौकरी लग जाये तो तुम्हारी शादी कर के मैं अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो जाऊं।'' मुखिया ने चेतन की इच्छा जाननी चाही।

''नौकरी तो मैं नहीं करूंगा।''

''क्यों ? बी.ए. तक की पढ़ाई क्या बेकार जायेगी ?''

''पढ़ाई का मतलब केवल नौकरी करना ही तो नहीं है।''

''तो क्या करोगे ?''

''अपना पुश्तैनी धंधा— खेती।''

''खेती का काम अति कठिन है। खूब सोच समझ लो। खेती के काम में कई हाथों की जरुरत होती है। अकेले आदमी के लिए नौकरी ही श्रेष्ठ है। फिर तुम्हारे खेत की देखभाल-तो मैं कर ही रहा हूं। तुम्हें चिन्ता किस बात की ? क्या मुझ पर भरोसा नहीं ?

''आप मुझे शर्मिन्दा मत करिये। आपके उपकार तो मैं शायद दूसरे जन्म में भी चुकता नहीं कर पाऊंगा। पर मेरे पिताजी की इच्छा थी कि मैं पढ़-लिख कर सही तरीके से खेती करके उपज को दुगुना करूं। अतः मैं दिल से खेती के काम में जुट कर उनकी इच्छा को पूर्ण करना चाहता हूं।''

''तुम्हारे विचार से मैं पूरी तरह सहमत हूं। कल से ही तुम अपने खेत को संभाल लो। यदि किसी प्रकार की कोई कठिनाई आये तो निस्संकोच मुझ से कहना। मैं हर समय, हर प्रकार से तुम्हारी सहायता करूंगा।

''माता-पिता के बाद आपका ही तो हाथ है मेरे सिर पर। यदि आप सहारा नहीं देते तो शायद मैं कब का मिट चुका होता। मेरा अपना तो कोई था नहीं। मेरे लिए आप ही सब कुछ हैं।''

''मुखियाजी मुस्कुरा दिये।

एक दिन चेतन खेत में काम कर रहा था। अचानक मुखियाजी वहां पहुंचे।

''और कहने लगे— ''चेतन, मैंने तुम्हारी शादी के लिए बहुत कोशिश करी परन्तु सब का एक ही कहना है कि हमारी लड़की खेत में काम नहीं करेगी। यदि तुमने मेरी बात मानी होती तो आज ऐसी बाते नहीं सुननी पड़तीं। अब भी मान जाओ। खेत की देख-भाल मैं कर लूंगा और तुम शहर में नौकरी कर लो। मेरी अच्छी जान-पहचान है, तुम्हें अच्छी नौकरी मिल जायेगी। हर मां-बाप चाहता है कि नौकरी वाले के साथ शहर में लड़की सुखी रह सकती है।

''यदि सब ऐसा सोचेंगे तो खेतों में काम कैसे होगा ?''

''तुम ठीक कह रहे हो, पर खेतों में तो अनपढ़ ही काम कर सकते हैं।''

''ऐसी बात नहीं है। पढ़ा-लिखा व्यक्ति सही बीज, सही खाद और ठीक समय पर सिंचाई का ध्यान रखकर उपज बढ़ा सकता है।''

''सो तो तुम ठीक कह रहे हो। लेकिन अपनी बिरादरी में शायद कोई भी खेत में काम करने के लिए लड़की देने को तैयार नहीं

होगा और अकेले खेती का काम तुम्हारे लिए मुश्किल है।''

''अपनी जाति में न सही, किसी दूसरी जाति की लड़की खोज लीजिये। लेकिन लड़की मेरे साथ खेत में सहायता करने वाली होनी चाहिये।''

''दूसरी जात की लड़की मैं तलाश नहीं करूंगा। सारा गांव मुझ पर थूकेगा।''

''ठीक है, मैं स्वयं ही कोशिश करूंगा।''

''लेकिन समाज क्या कहेगा''

''पुरानी गली-सड़ी परम्पराओं को तोड़ना यदि समाज को अच्छा नहीं लगता है तो न सही।''

मुखियाजी चुपचाप चले गये। उन्हें अपनी आशा पर पानी फिरता नज़र आ रहा था।

कुछ ही दिनों में चेतन ने अपने सहपाठी विनोद की बहन कमली से विवाह कर लिया। सारे गांव में शोर मच गया कि चेतन ने दूसरी जात की लड़की से विवाह कर लिया। कई प्रकार की बातें चेतन के कानों में पहुंची लेकिन चेतन का एक ही उत्तर था कि कमली सुंदर, सुशिक्षित और खेती के काम में निपुण है। मैंने उचित समझा और शादी कर ली। जात-पात को मैं मानता नहीं हूं क्योंकि जात-पात के बंधन हम लोगों ने ही बनाये हैं। हो सकता है कि किसी समय ये बंधन सही रहे होंगे। लेकिन आज के युग में जात-पात हमारे उन्नति के मार्ग में सब से बड़ा रोड़ा है। इस रोड़े को हटाना हम सब का कर्त्तव्य है। जब तक भेदभाव रहेगा तब तक हम लोग उन्नति भी नहीं कर सकते हैं और सुखी भी नहीं रह सकते हैं। सब से बड़ा धर्म और जाति इन्सानियत है।

चेतन की बातों से गांव के कुछ पढ़े-लिखे युवकों ने चेतन का समर्थन किया।

चेतन ने कृषि अनुसंधान आदि कई संस्थाओं से सम्पर्क स्थापित किया। नई-नई जानकारी प्राप्त की और अपनी पत्नी कमली के साथ दिलोजान से खेती के काम में जुट गया।

दोनों की मेहनत रंग लाई। खेत लहलहाए, ऐसे लहलहाए कि आंख उनपर उठकर देखती, दस-दस फीट से भी अधिक ऊंची ईख नाचती नज़र आती। चेतन बहुत खुश था— कमली देख ईख कितनी अच्छी हुई है खूब गन्ना होगा। बाजार में तो इसकी ऐसी कीमत मिलेगी कि बस....।

चेतन के खेत में ईख को देखकर सारा गांव चकित रह गया। एक दिन मुखिया के पाले हुए किराये के आदमियों ने कहा— मुखियाजी, यदि आप आज्ञा दें तो चेतन का खेत एक ही रात में नष्ट कर दें। उसके बाद आप चेतन की सहायता मत करना। मजबूर होकर नौकरी करेगा और खेत को फिर तुम्हीं संभालोगे।

''नहीं-नहीं, ऐसा सोचना भी पाप है। खेत चेतन की जान है। बड़ी मेहनत करी है। चेतन पढ़ा-लिखा है। उसकी पैनी नज़र से बचना मुश्किल है। यदि ज़रा भी भनक पड़ गई तो गांव में हम किसी को मुंह दिखाने लायक नहीं रहेंगे। इससे कुछ सीखो। मुझे विश्वास है कि चेतन एक दिन सारे गांव को स्वर्ग बना देगा। सचमुच अनपढ़ और पढ़े-लिखे के काम में बहुत अन्तर है।''

फिर मुखियाजी चेतन के खेत में गये। चेतन और कमली ने मुखियाजी के पैर छुए। मुखियाजी ने दीर्घायु का आशीर्वाद दिया और कहा चेतन, मुझे तुम पर गर्व है और विश्वास है कि तुम पूरे गांव वालों को अपने ढंग से खेती करना सिखाओगे।

''आपका कहना मैं कभी टाल सकता हूं''

''मुझे तुम से यही उम्मीद थी। लेकिन एक बात और भी है।''

''क्या ? आप निस्संकोच कहिये। आपकी हर बात का पालन होगा।''

''मैं चाहता हूं कि तुम्हारे खेत का गन्ना सबसे पहले मैं चूसूं।''

''आपने तो मेरे मन की बात कह डाली।''

और फिर मुखिया बड़े प्यार से चेतन और कमली की ओर देखने लगा और और मन-ही-मन अपनी सोच पर पछता भी रहा था।

सी-12, मकान नं० 113,
सैक्टर-3, रोहिणी, नई दिल्ली

कृषि साख - दशा एवं दिशा

□ डॉ० अजय जोशी □

कृषि हमारी अर्थ व्यवस्था का मूल आधार है। कृषि उत्पादन ही हमारे जीवन तथा औद्योगिक आवश्कयताओं की पूर्ति करती है। हमारी ग्राम प्रधान जनसंख्या के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए यह आवश्यक है कि कृषि में पर्याप्त सुधार हो। कृषि कार्य में संलग्न किसान प्राय: गरीब व अभावों से ग्रस्त होते हैं। उनके लिए महंगे कृषि उपकरण, फर्टिलाईजर, उन्नत बीज आदि पर भारी व्यय करना संभव नहीं होता। कृषि कार्य में संलग्न व्यक्तियों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कृषि साख संस्थाएं कार्यरत हैं। प्राथमिक कृषि साख सहकारी समितियां, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक तथा वाणिज्यिक बैंक कृषि साख की व्यवस्था करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रही हैं।

कृषि साख संवितरण

विगत कुछ वर्षों में सहकारी क्षेत्र तथा वाणिज्यिक बैंकों ने कृषि संबंधी साख सुविधाओं की उपलब्धि की दिशा में काफी महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। इनके द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में कृषकों को जो साख सुविधाएं उपलब्ध करायी गयी हैं उसे निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :

तालिका : कृषि साख संवितरण

(करोड़ रुपये में)

मद	1985-86	86-87	87-88	88-89	89-90	90-91
सहकारी संस्थाएं						
लघु अवधि	2747	2833	3116	3513	3654	2066
मध्यम अवधि	394	529	613	381	416	317
दीर्घ अवधि	533	540	599	719	744	804
वाणिज्यिक बैंक/ क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक	3131	3809	4009	4291	7515	7181
लघु अवधि व आमावधिक ऋण	6805	7711	8337	8854	12329	10368

नोट : वर्ष 1988-89 से 1990-91 तक के आंकड़े अस्थायी हैं।

स्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण 1990-91

इस तालिका से स्पष्ट है कि सहकारी समितियां तथा वाणिज्यिक व क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने बड़ी मात्रा में ऋण उपलब्ध कराये हैं। वर्ष 1990-91 के अस्थायी आंकड़ों के अनुसार सहकारी समितियों ने कुल 3,187 करोड़ रुपये की राशि ऋण के रूप में उपलब्ध करायी है। वर्ष 1991-92 के लिए लक्ष्य राशि 6,656 करोड़ रुपये है। इसी प्रकार वाणिज्यिक बैंकों में वर्ष 1990-91 में 7,181 करोड़ रुपये की राशि कृषि साख वितरित करने का लक्ष्य निर्धारित किया। वर्ष 1991-92 के लिए यह लक्ष्य राशि 8,799 करोड़ रुपये है।

तालिका से विभिन्न वर्षों में कृषि साख की उपलब्धि का अध्ययन करें तो हम पायेंगे कि सहकारी बैंकिंग दोनों ही क्षेत्रों में कृषि साख में वृद्धि का क्रम जारी है। वर्ष 1985-86 में सहकारी क्षेत्र ने लघु, मध्यम तथा दीर्घ अवधि की साख सुविधाएं उपलब्ध कराते हुए 3,674 करोड़ रुपये की राशि वितरित की। वर्ष 1989-90 में यह राशि बढ़ कर 4,814 करोड़ रुपये हो गयी। वर्ष 1990-91 में थोड़ी कम होकर यह राशि 3,187 करोड़ रही। वर्ष 1991-92 के लिए 6,656 करोड़ रुपये का लक्ष्य रखा गया था जो कि विगत छ: वर्षों से सर्वाधिक है।

इसी प्रकार क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों तथा व्यापारिक बैंकों ने भी कृषि की उपलब्धि की दिशा में काफी योगदान किया है। वर्ष 1985-86 में इनके द्वारा 6,805 करोड़ रुपये की राशि कृषि साख के रूप में वितरित की गयी जो कि वर्ष 1988-89 तक बढ़कर 8,854 करोड़ रुपये हो गयी। वर्ष 1989-90, 1990-91 तथा 1991-92 के लिए कृषि साख के रूप में वितरण योग्य राशि का लक्ष्य क्रमश: 7,515, 7,181, 8,799 करोड़ रुपये रखा गया है।

इन आंकड़ों से स्पष्ट है कि कृषि साख की मात्रा में निरंतर वृद्धि हो रही है। सहकारी क्षेत्र तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक व वाणिज्यिक बैंक मिलजुल कर कृषि साख आवश्यकताओं की पूर्ति की दिशा में कार्य कर रहे हैं।

कृषि साख की समस्याएं

इतना सब कुछ होते हुए भी कृषि साख की कुछ समस्याएं हैं

जिनके रहते कृषि साख की उपलब्धि तथा उपयोगिता की दिशा में अधिक सुधार नहीं हो पाये हैं। कृषि साख अभी भी कृषि उत्पादन वृद्धि में प्रभावी भूमिका का निर्वाह नहीं कर पायी है। ये समस्याएं निम्न हैं:

1. यद्यपि कृषि साख की मात्रा में भारी मात्रा में वृद्धि हुई है परंतु जनसंख्या में वृद्धि तथा कृषि उपकरणों, खाद व बीजों आदि के मूल्यों में भारी वृद्धि को दृष्टिगत रखकर देखें तो यह राशि अभी भी हमारी कृषि साख आवश्यकताओं की तुलना में काफी कम है।

2. कृषि ऋणों की वसूली में कमी तथा बकाया ऋणों की वृद्धि में भी कृषि साख को प्रभावित किया है। पिछले तीन-चार वर्षों में 40 से 42 प्रतिशत ऋण राशि बकाया के रूप में रही है। इससे सहकारी संस्थाओं तथा बैंकों को अन्य व्यक्तियों को कृषि साख सुविधाएं उपलब्ध कराने में भी बाधा आयी है।

3. कृषि साख सुविधाओं का लाभ प्राय: उन किसानों तक नहीं पहुंच पाता जिन्हें वास्तव में ऋण की आवश्यकता है। बड़े व प्रभावशाली लोग यह ऋण प्राप्त कर लेते हैं। इससे जहां एक ओर ऋणों की वसूली में बाधा आती है वहीं वास्तव में जरूरत मंद कृषकों को ऋण नहीं मिल पाता।

4. प्राय: यह भी देखा गया है कि कृषकों को पर्याप्त मात्रा में ऋण नहीं मिलता। इस कारण उस ऋण का उपयोग वे कृषि कार्यों में नहीं कर के अपनी सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति में लगा देते हैं। कृषि साख का उद्देश्य पूरा नहीं होता तथा कृषि ऋणों की वसूली की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

5. यह भी देखा गया है कि ऋण प्रदान करने वाली संस्थाओं की कागजी कार्यवाही इतनी लंबी चौड़ी व पेचीदा होती है कि गांव के लोग गरीब व अनपढ़ किसान के लिए ऋण संबंधी सारी औपचारिकताएं पूरी करना मुश्किल हो जाता है। इससे उसे ऋण मिलने में कठिनाई आती है।

6. पर्याप्त सिंचाई सुविधाएं नहीं होने के कारण कारण कृषि आज भी मानसून का जुआ है। कृषक को ऋण मिल भी गया परन्तु वर्षा पर्याप्त नहीं होने के कारण फसल नहीं हो पायी तो भी ऋण चुकाने की उसकी क्षमता प्रभावित होगी। उससे भी बैंक नई साख सुविधा उपलब्ध कराने में कठिनाई होगी।

7. हमारे यहां प्राथमिक कृषि साख समितियां ग्रामीण बैंकों तथा वाणिज्यिक बैंकों की शाखाओं की संख्या अभी भी पर्याप्त नहीं है। अभी भी बहुत से ग्रामीण क्षेत्र इनकी सुविधाओं से वंचित हैं। वहां के निवासियों को कृषि ऋण प्राप्त करने में काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

समाधान

ऐसे ही बहुत से कारण हैं जिनके रहते कृषि ऋणों में वृद्धि होने के बावजूद भी कृषकों को उनका पर्याप्त लाभ नहीं मिल पाया है। इस कारण गरीब कृषक की स्थिति में सुधार आने की जगह बिगाड़ ही आया है। कृषि साख सुविधाओं के विकास के विस्तार हेतु प्रभावी सुविधाएं उपलब्ध कराने वाली संस्थाओं व बैंकों की संख्या में वृद्धि होनी चाहिए वही उन्हें ऋण हेतु कम से कम औपचारिकताएं निर्धारित करनी चाहिए। उन्हें यह सुनिश्चित करना चाहिये कि उन्हीं व्यक्तियों को ऋण मिल सके जिन्हें वास्तव में इसकी आवश्यकता है। ऋण राशि भी पर्याप्त हो ताकि वह अपनी कृषि आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। इन संस्थाओं को अपनी बकाया राशि की वसूली पर भी पूरा ध्यान देना चाहिये। उन्हें कृषकों को नये तरीकों से खेती करने हेतु प्रशिक्षित करने में सहयोग देना चाहिये। कृषकों के कृषि उत्पादन के विपणन में भी सहयोग देना चाहिये ताकि वे अपनी राशि चुका सकें। ऋण की वसूली की सुविधाजनक किश्तें निर्धारित कर उन्हें उस समय वसूल करने का प्रयास करना चाहिये जबकि फसल तैयार हो गयी हो तथा किसान ने उनका विक्रय कर दिया हो।

ऐसे ही कुछ प्रभावी प्रयासों को अपनाकर यदि कृषि साख सुविधाओं का विस्तार किया जाय तो जहां एक ओर कृषि उत्पादन में वृद्धि होगी और इससे उद्योगों को आवश्यक कच्चा माल मिलेगा जिससे उसके विकास के अवसर बढ़ेंगे। दूसरी ओर हमारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था के आधार पर कृषकों का जीवन स्तर ऊंचा होगा। ये दोनों ही बातें हमारी वर्तमान अर्थव्यवस्था की दृष्टि से आवश्यक भी हैं। इस दिशा में प्रभावी प्रयासों की आवश्यकता है।

संपादक
मरु व्यवसाय चक्र
प्रवक्ता-व्यावसायिक प्रशासन
श्री जैन पी.जी. कॉलेज
गंगाशहर, बीकानेर

नवीन आर्थिक परिवर्तन एवं ग्रामीण विकास

□ डा० अभय □

□ डा० एस०के०महेन्द्रा □

सातवीं पंचवर्षीय योजना 31 मार्च 1990 को समाप्त हुई। सामान्य परिस्थितियों में आठवीं योजना 1 अप्रैल 1990 से प्रारम्भ हो जानी चाहिए थी किन्तु केन्द्र में सत्ता परिवर्तन बार-बार होने से योजना के दस्तावेज को अन्तिम रूप नहीं दिया जा सका। खाड़ी युद्ध ने भारतीय अर्थव्यवस्था को प्रभावित किया। इसके कारण केन्द्र में गठित सरकार के सामने भुगतान असंतुलन का अभूतपूर्व संकट उत्पन्न हुआ। विदेशी भुगतान को करने हेतु देश के स्वर्ण को गिरवी रखना पड़ा। इसके बाद पुनः चुनाव होने पर श्री पी.वी. नरसिंह राव के नेतृत्व में नई सरकार ने सत्ता संभाली। इस बीच वर्ष 1990-91 तथा 1991-92 की वार्षिक योजनाएं बनाकर 1 अप्रैल 1992 से आठवीं योजना प्रारम्भ करने का निर्णय हुआ। राष्ट्रीय विकास परिषद ने दिसम्बर 1991 में आठवीं योजना के दृष्टिकोण पत्र का अनुमोदन कर दिया था। यह दृष्टिकोण पत्र ही योजना के अंतिम दस्तावेज का आधार होगा। सोवियत संघ जैसे शक्तिशाली देश का विघटन हो चुका है, पश्चिमी यूरोप में साझा बाजार तथा विकासशील देशों में बड़े-बड़े आर्थिक सुधार किये जा रहे हैं, ऐसी परिस्थितियों में हमारी आठवीं योजना 1 अप्रैल 1992 को विधिवत् रूप से शुरू हो चुकी है।

आठवीं योजना के परिप्रेक्ष्य में हमें यह बात ध्यान में रखनी होगी कि कम से कम 10 करोड़ बेरोजगारों के साथ हम इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करेंगे और उस वक्त हमारी जनसंख्या भी 100 करोड़ को पार कर जाएगी। लेकिन अभी पिछले वर्ष वर्तमान सरकार ने भी विदेशी मुद्रा संकट से उबरने हेतु देश के रिजर्व बैंक के स्वर्ण को विदेशी संस्थाओं के हाथों गिरवी रखा था। उसके बाद वर्तमान सरकार ने विदेशी भुगतान संतुलन की समस्या से निपटने के लिए अपना पूरा ध्यान विदेशी मुद्रा प्राप्ति की ओर केन्द्रित कर दिया। अप्रवासी भारतीयों से विदेशी मुद्रा प्राप्ति की योजनाएं बनीं। इससे हमारे विदेशी मुद्रा भण्डार में उत्साहजनक वृद्धि हुई। जुलाई 1991 में पांच विदेशी मुद्राओं के साथ दो किश्तों में लगभग 20 प्रतिशत तक अपनी मुद्रा का अवमूल्यन कर डाला गया। अवमूल्यन करने के पीछे भुगतान असन्तुलन को सुधारने में मदद मिलने की आशा की गई। लेकिन वर्तमान में किये गये अवमूल्यन के वांछित परिणाम अभी तक सामने नहीं आ सके हैं।

नियोजन के इकतालीस वर्षों में नियोजन को देश में मिश्रित अर्थव्यवस्था के तहत् चलाया गया। इस व्यवस्था में भी हमारा झुकाव समाजवाद की ओर अधिक था। पं० नेहरू ने लम्बे समय तक देश का नेतृत्व किया। अर्थव्यवस्था के विकास के संदर्भ में उनके विचार गांधी जी के आर्थिक विचारों से थोड़ा भिन्न थे। उन्होंने देश के औद्योगिक विकास हेतु बड़े उद्योगों के विकास के लिए विदेशी सहायता से योजनाएं बनायीं। इससे देश में औद्योगिक विकास का ढाँचा स्थापित हुआ। हम विश्व में औद्योगिक विकास की दृष्टि से दसवें नम्बर पर आ गये। नियोजन की प्रारम्भिक अवस्था में देश में सुई तक नहीं बनती थी वहीं आज बड़े-बड़े जहाज आदि बन ही नहीं रहे बल्कि निर्यात भी होने लगे हैं। देश के विकास हेतु सार्वजनिक क्षेत्र के विकास एवं विस्तार पर बड़ी भारी धनराशियां खर्च की गई जिसके कारण आज जीवन का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जहां सार्वजनिक क्षेत्र अछूता हो। सातवीं योजना में भी सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार हेतु आयातों पर कोई अंकुश नहीं लगाया गया। निर्यातों में आशाजनक परिणाम प्रदर्शित करने में निजी एवं सार्वजनिक दोनों क्षेत्र असफल रहे। फलतः विदेशी मुद्रा संकट उत्पन्न हुआ। सरकार द्वारा विदेशी ऋणों एवं उनके ब्याज के भुगतान हेतु नये ऋण लेकर उसकी भरपाई की जाती रही और हमें यह संकट एक दिन देखना ही था। यह क्रम अभी बदस्तूर जारी है। इधर सार्वजनिक क्षेत्र में उपक्रमों में अधिकांश घाटे में चलते रहने से भी इसकी योजनाओं के लिए वित्त के पर्याप्त साधनों का अभाव रहा।

विदेशी मुद्रा संकट, सार्वजनिक क्षेत्र की असफलता, सोवियत संघ जैसे सुदृढ़ देश का विघटन, विश्व में हो रहे नवीन आर्थिक परिवर्तनों, स्वतन्त्र बाजार व्यवस्था की ओर आकर्षण की प्रवृत्ति के मद्देनजर भारत में नवीन आर्थिक परिवर्तनों को लागू किया गया है। नवीन औद्योगिक नीति में संयुक्त उपक्रमों में विदेशी मुद्रा की हिस्सेदारी की 51 प्रतिशत तक छूट दी गई है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को देश में उद्योग लगाने की छूट दी गई है। केवल 20 उद्योगों को

छोड़कर लाइसेन्स प्रणाली समाप्त कर दी गई है।

आठवीं योजना में इस शताब्दी के अंत तक पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु पर्याप्त रोजगार के अवसर पैदा करना, जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण, सभी को प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करना, प्रौढ़ों में निरक्षरता का पूर्णतया उन्मूलन, स्वच्छ पेयजल की व्यवस्था, सभी लोगों को प्राथमिक स्वास्थ्य की सुविधाएं उपलब्ध कराना, कृषि उत्पादन में वृद्धि ताकि निर्यात भी बढ़े, ऊर्जा, परिवहन, संचार तथा सिंचाई जैसे मूल ढाँचे को सुदृढ़ करना, मैला ढोने की प्रथा पूरी तरह समाप्त करना आदि महत्वपूर्ण लक्ष्य रखे गये हैं। ये सारे तत्व ग्रामीण विकास के क्षेत्र से समन्वित रूप से संबंधित हैं।

वास्तव में ग्रामीण विकास का अर्थ गांव के लोगों के शैक्षिक, आर्थिक, नैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को सुधारने से है। ग्रामीण विकास मूलतः ग्रामवासियों के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन को सुधारने की उपयुक्त रणनीति है। पिछले दिनों जो तेजी से आर्थिक परिवर्तनों का दौर चला है, उसमें सार्वजनिक क्षेत्र की हिस्सेदारी को आठवीं योजना में 43 प्रतिशत तक सीमित किया जा रहा है। स्पष्टतः सरकार का झुकाव खुले बाजार की ओर है। अब तक सार्वजनिक उपक्रम उन स्थानों पर स्थापित किये जाते थे जो विकास की दृष्टि से उपेक्षित होते थे। सन्तुलित विकास की दृष्टि से यह जरूरी भी था लेकिन अब सार्वजनिक उपक्रमों के बढ़ते घाटे से सरकार चिन्तित है। उनके कामकाज की समीक्षा हो रही है। उनकी 20 प्रतिशत तक पूँजी निजी क्षेत्र को बेची जा रही है। निश्चित ही भविष्य में सार्वजनिक क्षेत्र में उपक्रमों का रुझान भी निजी क्षेत्र से प्रतियोगिता में टिकने के लिए अपने उपयुक्त अवसर खोजेगा तथा लागत और लाभ की ओर विशेषतः ध्यान देगा। ही सरकार की सार्वजनिक क्षेत्र की इस नीति से ग्रामीण विकास को धक्का लगेगा। निजी क्षेत्र पूर्णतः निजी लाभ को ध्यान में रखकर ही अपना व्यवसाय चलाता है। उसकी रूचि कदापि ग्रामीण क्षेत्रों में अपने उपक्रमों को लगाने की नहीं होगी जहां लागत अपेक्षाकृत ऊंची आती है तथा जन सुविधाएं नगण्य होने की स्थिति में लाभ की संभावनाएं त्वरित न होकर दीर्घकालीन होती हैं। निजी क्षेत्र की रूचि तत्काल लाभ लेने की होती है। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार अवसरों के सृजन पर प्रतिकूल पड़ेगा जबकि बेरोजगारी एवं गरीबी ग्रामीण क्षेत्रों में गंभीर रूप में विराजमान है।

आठवीं योजना के पहले वर्ष 1992-93 के बजट में ग्रामीण विकास के अहम् क्षेत्र कृषि को अपेक्षित स्थान नहीं मिला है। सरकारी रियायतें कम किये जाने से एक ओर कृषि लागतें बढ़ेंगी तथा दूसरी ओर मुद्रा स्फीति के दबाव को कम करने हेतु सरकार का प्रयास कीमतों को कम करने का रहेगा जिससे कृषकों की आर्थिक स्थिति पर यह विरोधाभास यह सोचने को मजबूर करता है कि सरकार की यह मूल्य नीति कृषि को उद्योग के महत्वपूर्ण दर्जे में बनाये रखने की रहेगी अथवा भारत के आर्थिक विकास के प्रारम्भिक चरणों के समान कृषि को धकेलकर मात्र जीविका उपार्जन का साधन बनाकर छोड़ेगी जिसमें भारत कृषि प्रधान देश होने के बावजूद अपनी खाद्यान्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आयात करने को मजबूर हो जाएगा। इक्कीसवीं सदी के परिप्रेक्ष्य में 100 करोड़ की आबादी की जरूरतों के मुताबिक हमें अपनी कृषि उत्पादकता एवं निर्यातों में वृद्धि तथा रोजगारोन्मुख योजनाओं के विकास के संदर्भ में कृषि तंत्र में सुधार अपेक्षित है।

उर्वरकों के मूल्यों में वृद्धि, वर्षा समय से पर्याप्त मात्रा में न होने तथा बिजली की कमी से भी कृषि तंत्र की कठिनाइयां बढ़ी हैं। ये ऐसी कठिनाइयां हैं जो केवल फसल के ज्यादा समर्थन मूल्य देने से हल होने वाली नहीं हैं। दूसरे ग्रामीण उद्योगों तथा परम्परागत तकनीक से चालित कुटीर उद्योगों को अनियंत्रित औद्योगिक विकास से मुकाबला करना है। नई नीति में तर्क यह है कि प्रारम्भ में कठिनाई का दौर चलने के बाद हमारी अर्थव्यवस्था शीघ्र ही संकट से उबर जाएगी। लेकिन हमें ये सोचना ही होगा कि उद्योगों एवं व्यापारिक विकास की यह जगमगाहट हमारे ग्रामीण एवं लघु उद्योगों को कहीं निगल न जाये। हमें आने वाले प्रत्येक वर्ष में 1 करोड़ लोगों के लिए रोजगार के अवसरों को सृजित करना है, यह विचारणीय बात है।

भारतीय बाजारों में खुलेपन की नीति बहुराष्ट्रीय कंपनियों को आमन्त्रित कर रही है जिससे अल्पकाल में उपभोक्ताओं को प्रतिस्पर्धात्मक मूल्यों पर अच्छी गुणवत्ता का माल उपलब्ध होगा। लघु उद्योगों को अपने उत्पादन तकनीकी में सुधार तथा प्रतियोगिता करने का अवसर मिलेगा। वांछित सरकारी सहायता, सरकारी अधिकारियों में राष्ट्र की भावना की जागृति, बैंकों की उदारीकृत सहायता से विदेशी मण्डियों में लघु उद्योग विकसित हो सकते हैं लेकिन सामान्य भारतीय में राष्ट्रीय भावना का अभाव इस तथ्य को सशंकित करता है कि हमारे लघु उद्योग विदेशी प्रतियोगिता के सामने ठहर नहीं पायेंगे। इसका परिणाम तीन-चार वर्षों में विपणन

के क्षेत्र में असफल हो जाने से उनमें रूग्णता बढ़ेगी जिससे पूंजी विनियोग, श्रम नियोजन, सरकारी सहायता, बैंक ऋण आदि सभी डूबते नजर आएंगे। जबकि आज ग्रामीण विकास में लघु उद्योग महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। विदेशी पूँजी के आकर्षण के दूरगामी परिणाम लाभांश के रूप में पूँजी के परोक्ष निर्यात के रूप में प्रदर्शित होंगे। विदेशियों की पूँजी की बहुलता औद्योगिक इकाइयों के प्रबन्ध संचालन को प्रभावित करेगी यह स्थिति हितकर नहीं सोची जा सकती। लघु उद्योगों की असफलता कृषि के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा बनेगी जबकि व्यापारिक फसलें हतोत्साहित होंगी। बहुराष्ट्रीय कंपनियां ऊँची तकनीक को अपनाएंगी। हमारे लघु, कुटीर एवं ग्रामोद्योग अभी तक सरकारी संरक्षण एवं सहायता से पनपे हैं। आने वाले समय में इनका प्रभाव लघु उद्योग क्षेत्र पर प्रतिकूल ही पड़ेगा। उपभोक्ता सामग्री के निर्माण में भी ये कंपनियां आएंगी तो निश्चित ही हमारे उद्योग पतन की ओर जा सकते हैं।

भारत जैसे देश में जहां पूँजी का अभाव, जनसंख्या वृद्धि की समस्या और जीवन की मूल आवश्यकताओं को प्राप्त करने की अधिकांश को जरूरत हो वहाँ की आर्थिक स्थिति में सुधार लघु, कुटीर एवं ग्रामीण उद्योग ही कर सकते हैं। ऐसे उद्योग धधों के विकास से कृषि पर से जनसंख्या के दबाव को कम किया जा सकता है तथा गाँवों से शहरों की ओर पलायन रूक सकता है। इससे शहर भी स्वच्छ रह सकेंगे। शहरों और उद्योगों के विकास के साथ ग्रामीण विकास भी जरूरी है।

अन्तिम बात जो ग्रामीण विकास एवं वहां की निर्धनता से निकटता से जुड़ी है वह यह कि तीव्र विकास दर बढ़ाने हेतु यह सब आर्थिक सुधार हमारे आर्थिक विकास की दर को बढ़ा सकते हैं किन्तु देश की प्रगति हेतु केवल राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि ही जरूरी नहीं होती बल्कि उसका न्यायपूर्ण वितरण भी आवश्यक है। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में आधी के लगभग आबादी गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन कर रही है। खुलेपन का यह दौर निश्चित ही उन लोगों के लिए हितकर होगा जो पहले से शक्तिशाली हैं, समृद्ध हैं। इससे आर्थिक शक्तियाँ और अधिक केन्द्रित होकर रह जाएंगी। एकाधिकारवाद पनपेगा और अनेक व्यक्ति बिना कुछ किए आनन्द से जिएंगे जबकि अधिकांश को परिश्रम करने पर भी दो समय को भोजन नसीब नहीं होगा। वर्तमान में नवीन आर्थिक परिवर्तनों का मूल झुकाव जोकि आयात-निर्यात एवं औद्योगिक विकास की ओर है, इससे ग्रामीण विकास की संकल्पना को साकार करने में संशय है।

स्वयं सेवी संस्थाएं एवं जनसहयोग दो ऐसे कारगर तरीके हैं जो ग्रामीण विकास के लिए जरूरी हैं। ग्रामीण विकास के विभिन्न क्षेत्रों जैसे प्रौढ़ शिक्षा, पेयजल, स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवहन आदि में स्वयं सेवी संस्थाएं बड़ा अच्छा कार्य कर सकती हैं। ग्रामीण एवं कुटीर उद्योगों के विकास में बिजली एक बाधा है। ग्रामीण क्षेत्रों में सक्रिय कार्यकर्ताओं को बिजली की कमी दूर करने हेतु सामुदायिक गोबर गैस संयन्त्र लगाकर गांव के स्तर पर समस्या से निपटा जा सकता है। गांव स्तर पर पशुधन के विकास कार्यक्रमों में भी इसे व्यवस्थित किया जा सकता है। ग्रामीण उद्योगों को बड़े उद्योगों से प्रतियोगिता से बचाने में गोबर गैस परियोजना विशेष मददगार साबित होगी। ग्रामीण विकास में सौर ऊर्जा भी अपने आप में महत्वपूर्ण है। इस ऊर्जा प्रयोग से जहां विद्युत शक्ति के प्रयोग में बचत होती है वहीं यंत्रीकरण के कार्य में कोई बाधा नहीं आती है तथा सौर ऊर्जा के एकत्रीकरण में मामूली यंत्रों का उपयोग किया जाता है। अत: आठवीं योजना में ग्रामीण विकास के परिप्रेक्ष्य में सौर ऊर्जा के विकास एवं प्रयोग पर अधिकाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

वरिष्ठ प्रवक्ता, स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र विकास एवम्
विभाग प्रभारी-वाणिज्य संकाय,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
ऋषिकेश : देहरादून: उ०प्र०-249201

बैंक और भारतीय कृषि वित्त

□ डॉ० सुबोध कुमार □

वृहत बीस व्यापारिक बैंकों के दो चरणों में राष्ट्रीयकरण के बाद भारतीय बैंकिंग उद्योग का 90 प्रतिशत भाग सार्वजनिक क्षेत्र में आ गया। बैंकों पर सामाजिक नियंत्रण की दृष्टि से यह स्थिति काफी सन्तोषजनक कही जा सकती है। देश की बैंकिंग संरचना में 275 बैंक संलग्न हैं। भारतीय स्टेट बैंक और 7 इसके सहयोगी बैंक, 20 राष्ट्रीयकृत बैंक, 196 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, 30 निजी क्षेत्र के बैंक और 21 भारत में कार्यरत विदेशी बैंक।

भारत में समग्र आर्थिक नियोजन की सफलता के लिये कृषि का समुचित विकास पहली अनिवार्यता है। देश में 67 प्रतिशत व्यक्ति कृषि कार्य में लगे हैं। उत्तर प्रदेश में 77 प्रतिशत व्यक्ति कृषि करते हैं। देश के कुल निर्यात में 40 प्रतिशत भाग कृषि उत्पादन का योगदान है। सकल घरेलू उत्पादन में कृषि का योगदान 32.6 प्रतिशत है। वर्ष 80-81 में सकल उत्पादन में कृषि का भाग 38 प्रतिशत और 70-71 में 45.2 प्रतिशत था। देश के प्रमुख वृहत उद्योग और लघु उद्योग कृषि उत्पादन पर आधारित हैं। उदाहरण के लिये सूती वस्त्र उद्योग, चीनी उद्योग, हैण्डलूम लघु उद्योग, खांडसारी गुड़ लघु उद्योग, वनस्पति तेल लघु उद्योग पूर्णतया कृषि पर आधारित हैं।

इस समय देश में बैंकों की 60113 शाखायें कार्य कर रही हैं। इनमें 35042 शाखायें ग्रामीण क्षेत्रों में हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की 59000 शाखायें हैं। स्टेट बैंक की शाखाओं की संख्या 11887 है। स्टेट बैंक के बैंकों की 75.4 प्रतिशत शाखायें ग्रामीण या अर्द्धशहरी केन्द्रों पर हैं। सार्वजनिक बैंकों की 68 प्रतिशत शाखायें ग्रामीण क्षेत्रों में हैं। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंको की 363 जिलों में 13523 शाखायें हैं। एक अनुमान के अनुसार ग्रामीण वित्त प्रबन्ध के लिये ग्रामीण बैंकों की 20,000 शाखाओं के जाल की आवश्यकता है। अभी यह लक्ष्य प्राप्त करना अपेक्षित है। सातवीं योजना में 30,000 करोड़ रुपये कृषि वित्त का प्रावधान रखा गया था। व्यापारिक बैंकों को 15400 करोड़ रुपये और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को 3600 करोड़ रुपये उपलब्ध कराना था। वर्ष 89 में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की साख 2252 करोड़ रुपये और व्यापारिक बैंकों की कृषि साख 13009 करोड़ रुपये रही।

कृषि वित्त के लिये देश में बहु संस्था तकनीक का संयोजन किया गया है। कृषि वित्त के तीन संस्थागत स्रोत हैं। सहकारी बैंक, व्यापारिक बैंक एवं क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक। नियोजन काल के पूर्वार्द्ध में सहकारी क्षेत्र का प्रभुत्व रहा। वर्ष 1969 में सम्पूर्ण संस्थागत कृषि वित्त में 79.7 प्रतिशत भाग सहकारी बैंकों और 20.3 प्रतिशत व्यापारिक बैंकों का था। बड़े व्यापारिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद में स्थिति इतनी बदली है कि अब कृषि वित्त में व्यापारिक बैंकों का योगदान 56.6 प्रतिशत और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का अंशदान 4.9 और सहकारी क्षेत्र का भाग 38.5 प्रतिशत है।

कृषि वित्त का एक बड़ा भाग गैर संस्थागत स्रोत पूरा करते हैं। साहूकार और देशी बैंकर्स रिजर्व बैंक की नियंत्रण परिधि से बाहर हैं। समूचे कृषि वित्त में 40 प्रतिशत भाग इनका है। आर्थिक नियोजन में चार दशकों के अनुभव के बाद भी कृषि वित्त की यह समस्या अभी पूरी नहीं सुलझ सकी है। ऐसे उपचार किये जाने चाहिये जिससे कि साहूकार और देशी बैंकर्स रिजर्व बैंक के नियंत्रण में आयें। दूसरा उपचार यह है कि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक प्रतिस्पर्धा में आगे निकलकर साहूकार और देशी बैंकर्स को बाजार से बाहर कर दें। आज तक कृषक की धीमी आर्थिक प्रगति का कारण सर्वव्यापी देशी बैंकर की सक्रियता रही है। बैंकों को साहूकार और देशी बैंकर्स का मात्र स्थानापन्न नहीं बनना है। अपितु ऐसी छवि बनानी है जिससे गरीब ग्रामीण बैंकों को अपना शुभचिन्तक समझ सकें।

कृषि वित्त के दो स्वरूप हैं - प्रत्यक्ष कृषि वित्त और अप्रत्यक्ष कृषि वित्त। कृषकों को दिये जाने वाले अल्पकालीन ऋण, सावधि ऋण और कृषि सहचरी क्रियाओं के लिये ऋण प्रत्यक्ष वित्त की श्रेणी में आते हैं। खाद वितरण और दूसरे उपकरणों के लिये, विद्युत वितरण परिषदों के लिये और प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों के माध्यम से दिये गये ऋण अप्रत्यक्ष कृषि वित्त की श्रेणी में रखे

जाते हैं। प्रमुख बैंकों के राष्ट्रीयकरण के पूर्व कुल बैंक कृषि वित्त का 55 प्रतिशत भाग अप्रत्यक्ष कृषि वित्त के रूप में था और शेष 45 प्रतिशत प्रत्यक्ष सहायता थी। राष्ट्रीयकरण के बाद स्थिति इतनी बदली है कि वर्ष 88 में कुल बैंक कृषि ऋण का 87 प्रतिशत भाग प्रत्यक्ष कृषि वित्त है और अप्रत्यक्ष कृषि ऋण 13 प्रतिशत है। कृषि पोषण में बैंकों की सक्रिय हिस्सेदारी का यह ठीक प्रमाण है।

कृषि, लघु उद्योग और लघु व्यापार को प्राथमिकता क्षेत्र घोषित किया गया है। बैंकों के समक्ष लक्ष्य निर्धारित है कि कुल बैंक साख का 40 प्रतिशत प्राथमिकता क्षेत्र को दिया जाये। मार्च 90 तक कुल साख का 18 प्रतिशत कृषि वित्त एवं सहयोगी क्रियाओं के लिये सुनिश्चित किया गया। यह लक्ष्य वर्ष 88 के लिये 17 प्रतिशत और वर्ष 87 के लिये 16 प्रतिशत रखा गया था। उल्लेखनीय है कि सभी लक्ष्य प्राप्त किये गये। भारतीय कृषि भूमि का 69 प्रतिशत भाग सीमान्त एवं छोटे किसानों के पास है। सीमान्त और छोटे किसानों के अतिरिक्त ग्रामीण समाज में हस्तशिल्पी, भूमिहीन किसान, बंटाई पर खेती करने वाले किसान, कुटीर उद्योग चलाने वाले ग्रामीण और अनुसूचित या जनजाति के व्यक्ति हैं जो कि बैंक के लिये विशाल कार्य क्षेत्र हैं। बैंकों द्वारा कुल साख का 10 प्रतिशत कमजोर वर्ग को दिया जाना अनिवार्य है।

रिजर्व बैंक की कृषि साख समिति ने अपनी रिपोर्ट में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को इनके प्रवर्तक बैंक में विलय करने की सिफारिश की है। इस समिति ने समाज के कमजोर वर्ग के लिये बैंक साख का 15 प्रतिशत लक्ष्य रखने का सुझाव दिया है।

कृषि विकास के सन्दर्भ में क्षेत्रीय असमानता व्याप्त है। कृषि वित्त के वितरण में भी यह असन्तुलन बना हुआ है। यदि इसे न रोका जाये तो पूंजी की प्रवृत्ति उन्नत और विकसित क्षेत्रों जहाँ प्रत्याय की दर ऊँची होती है, की ओर चलने की होगी है। बैंक सहयोग से दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और मध्य क्षेत्र अधिक लाभान्वित हुए जो पहले ही उन्नत क्षेत्र थे। पूर्वी और पूर्वोत्तर राज्यों में विकास कार्यक्रमों की समुचित पहुंच नहीं हुई है। भौगोलिक कारण भी इस असमानता के लिये उत्तरदायी रहें हैं।

अप्रैल 89 से सेवा क्षेत्र उन्मुख योजना (सर्विस एरिया एप्रोच) नियोजित कृषि साख नीति की दिशा में मील का पत्थर कहा जा सकता है। इस योजना में बैंक की एक शाखा को 15-20 गांव दिये जाते हैं। इसमें प्रत्येक के लिये बैंक में साख योजना तैयार की जाती है और उसके अनुसार ऋण वितरण होता है। इस योजना के सफल क्रियान्वयन से एक व्यक्ति को कई शाखाओं से ऋण मिलना, पात्र व्यक्तियों का उपेक्षित हो जाना, आर्थिक आसार वाली गतिविधियों का पोषण न होना जैसी स्थितियों से निपटा जा सकता है।

बैंकों को विकास प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भागीदारी सौंपी गयी है। बैंक दूसरों के पैसे से व्यापार करते हैं। इन्हें अपना भी ध्यान रखना है क्योंकि इनके पास जमा धन जनता का है। वस्तुतः बैंक समाज के वित्तीय संसाधन के ट्रस्टी हैं। बैंकों की अपनी समस्यायें हैं। कई समस्यायें इतनी गम्भीर हैं कि यदि समय रहते इनका निदान नहीं किया गया तब बैंक स्वयं अर्थव्यस्था के लिये समस्या बन जायेंगे। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का उद्‌भव 1975 में विशिष्ट रूप से ग्रामीण विकास के लिये हुआ। अधिकांश ग्रामीण बैंक घाटे में चल रहे हैं। साथ ही कई राष्ट्रीयकृत बैंकों की स्थिति भी चिन्ताजनक है। इसके कई कारण रहे हैं। नई शाखा खोलने पर अच्छी जमा राशि एकत्र हो जाना किन्तु ऋण विस्तार न हो पाना। इस अनियोजित स्थिति में जल्दी ही शाखा की हालत बिगड़ जाती है। दूसरे, बहुत ही महत्वपूर्ण घटक है ऋण की वसूली न होना। ऋण उगाही बैंकों के समक्ष यक्ष प्रश्न है। इस कार्य में बैंकों को सरकार के सहयोग की अपेक्षा है किन्तु ऋण उगाही राहत योजना के क्रियान्वयन से ऋण उगाही प्रक्रिया को भारी धक्का लगा है। रिजर्व बैंक की प्रतिकूल प्रतिक्रिया के बाद भी यह योजना लागू की गयी। इस योजना का बैंक के ऋणग्राही पर दूरगामी और उल्टा प्रभाव पड़ा है। इससे बैंक की कठिनाइयां बढ़ेंगी। तीसरे बैंक अपने कोषों का विनियोग करने के लिये स्वतंत्र नहीं हैं। बैंक को अपने कोष का बड़ा भाग रिजर्व बैंक के निर्देश पर सुरक्षित रखना होता है। इसके बाद शेष कोष से कुछ निर्धारित लक्ष्य और सहायक लक्ष्य प्राप्त करना अनिवार्य है। इस प्रकार बैंकों के पास अति अल्प राशि बचती है जिसे वह लाभदायकता के आधार पर विनियोग कर सकें। चौथे, बैंकों को जमाओं एवं ऋण पर रिजर्व बैंक प्रशासित ब्याज दरें अपनानी होती हैं। कोषों के प्रयोग और ब्याज दर में विभेद की थोड़ी स्वतंत्रता से ही बैंक अपने लाभों को बढ़ा सकते हैं। पांचवे, जमा बीमा एवं ऋण गारण्टी योजना का बैंक मशीनरी पर प्रतिकूल प्रभाव देखने में आया है। इससे ऋण मशीनरी पर प्रतिकूल प्रभाव देखने में आया है। इससे ऋण वसूली में लगे स्टाफ में शिथिलता देखी गई है।

योजनाओं में अनुदान (सबसिडी) का प्रवधान समाप्त किया जाना चाहिए। अनुदान के लालच में अनावश्यक ऋण लेने की

शेष पृष्ठ 36 पर

ग्रामीण गरीबी तथा बेरोजगारी निवारण

□ डॉ. हरिवल्लभ त्रिवेदी □

दो-ढाई शताब्दियों तक शोषण से तबाह होती रही भारतीय अर्थव्यवस्था आज भी गरीबी तथा बेरोजगारी के नासूर से पीड़ित है। स्वतंत्र भारत की चार दशकों की राज्य निर्देशित विकास यात्रा के उपचार के बावजूद भी आज हमारे देश की लगभग 30 प्रतिशत आबादी गरीबी की रेखा के नीचे जीवनयापन करने की अभिशप्त हैं। गरीब के पास जीविका कमाने का/रोजगार का कोई सम्बल नहीं है, या फिर वह गरीबी की गिरफ्त से इसलिये बाहर नहीं आ पा रहा है क्योंकि उसके अपने परिवार के आकार के अनुपात में जीविकोपार्जन के साधन कम पड़ते हैं। पेट की भूख तथा नंगे बदन की तपन से पीड़ित इस देश के गरीब को सात पंचवर्षीय योजना पूरी होने के बावजूद अभी तक अपनी समस्या का स्थायी समाधान नसीब नहीं हुआ है।

यही कारण है कि ग्रामीण गरीबी उन्मूलन तथा बेरोजगारी निवारण की जुड़वां समस्याएं भारतीय नियोजनकर्त्ताओं के मानस पर विगत दो दशकों में विशेष रुप से मंडराती रही हैं। इन्हीं दो समस्याओं ने हमारे देश के प्रमुख राजनैतिक दलों-समूहों के चुनावी भाग्य को बहुत हद तक प्रभावित किया है। राजनैतिक उथल-पुथल के कारण भारत की आठवीं पंचवर्षीय योजना अन्तिम रुप ग्रहण नहीं कर पायी। गत एक वर्ष में श्री पी.वी. नरसिंह राव के नेतृत्व वाली केन्द्रीय सरकार ने विश्व के बदलते आर्थिक माहौल के अनुरुप भारतीय अर्थव्यवस्था में अनेक संरचनात्मक परिवर्तन किये हैं तथा इन्हीं परिवर्तनों की पृष्ठभूमि में आठवीं योजना का दिशा-निर्देशन पत्र (Directional paper) तैयार करवाया गया, इसे दिसम्बर, 91 में राष्ट्रीय विकास परिषद के समक्ष अनुमोदनार्थ प्रस्तुत किया गया तथा गत एक अप्रैल, 92 से देश की आठवीं पंचवर्षीय योजना विधिवत् ढंग से लागू हो चुकी है। पिछले दो दशकों के आर्थिक उतार-चढ़ावों तथा समूचे विश्व में हो रहे राजनैतिक एवं आर्थिक परिवर्तनों से आठवीं पंचवर्षीय योजना का प्रभावित होना अवश्यम्भावी है। विकास व्यूहरचना के बदले तेवरों की चर्चा कतिपय उन अहम् मुद्दों की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित करती है, जो आठवीं योजना के अन्तिम स्वरुप को प्रभावित करेंगे तथा जिनकी सफल क्रियान्विति से हमारे देश के आम आदमी का आर्थिक भाग्य जुड़ा हुआ है।

चार दशकों की परम्परागत नियोजन प्रणाली में रोजगार नीति

हमारे देश की नियोजन प्रणाली को पिछले चार दशकों में दो विपरीत अवधारणाओं में सामन्जस्य स्थापित करते हुये आर्थिक वृद्धि तथा गरीबी एवं बेकारी निवारण के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु विकास व्यूहरचना को निरुपित करने का दुरुह दायित्व निभाना पड़ा है। हमारे सामने एक तरफ तीव्र औद्योगीकरण तथा आधुनिकतम तकनीकी प्रगति का आर्थिक मॉडल था। दूसरी हमारी जनतंत्रीय शासन प्रणाली हमें विकास मॉडलों की तरफ सहज रुप से झुकने को विवश करती रही। देश का कृषिक्षेत्र पूर्णतः निजी हाथों में रहा है, जहां से श्रमशक्ति का 65 से 70 प्रतिशत भाग अपनी जीविका प्राप्त करता है। देश में उपभोग क्रियाएं सदा से पूर्णतः स्वतंत्र है, जबकि विनियोजन क्रियाओं को प्रत्यक्ष सरकारी हस्तक्षेप, लाइसेन्सिंग नीति तथा परमिट व्यवस्थाओं के जरिये हम नियंत्रित करते रहे हैं। इतना ही नहीं अपितु हस्तक्षेप तथा नियंत्रण की इन व्यवस्थाओं को कल्याणकारी राज्य की अवधारण का पर्याय मान लिया गया। परिणाम स्वरुप, संगठित निजी क्षेत्र का सहज विकास नहीं हो सका एवं न ही पर्याप्त संख्या में रोजगार के अवसर सृजित हो पाये।

बढ़ती बेरोजगारी के महादानव से लड़ने को अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार किया जाना जारी रहा तथा सार्वजनिक उपयोगी सेवाओं पर राज्य का एक छत्र प्रभुत्व स्थापित होता गया। कल्याणकारी राज्य की अवधारणा ने ऐसे श्रम कानूनों के निर्माण को प्रोत्साहित किया जो श्रमिक वर्ग के हितों की रक्षा के नाम पर प्रगतिशील कहलायें किन्तु इन कानूनों की आड़ में सार्वजनिक क्षेत्र में कार्यरत श्रमिक वर्ग क्रमशः अपने उत्तरदायित्वों के प्रति उदासीन होता गया। इस समूची योजना प्रक्रिया के परिणामस्वरुप सन् 1989 तक हमारे देश के सार्वजनिक क्षेत्र में कोई 18.5 मि. कर्मचारी काम पर लगे हुए थे जबकि देश का संगठित निजी उद्योग क्षेत्र केवल 7.4 मि. लोगों को ही रोजगार दे पाया था। 86-87 में सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार वृद्धि की दर 3 प्रतिशत के करीब थी जबकि निजी संगठित क्षेत्र 1.2 प्रतिशत वार्षिक दर से ही रोजगार उपलब्ध करवा पा रहा था।

पूर्ण रोजगार लक्ष्य प्रेरित नियोजन का युग

सर्वप्रथम, हमारी छठी पंचवर्षीय योजना के प्रथम प्रारुप (1978-83) में दस वर्ष की अवधि में पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को केन्द्र में रखते हुए कहा गया था कि 'बेरोजगारी को दूर करने की व्यूह रचना में कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों लघु उद्योग क्षेत्र, विनिर्माण तथा सेवाओं के क्षेत्र में आय तथा रोजगार अवसरों को बढ़ाने पर बल दिया जायेगा। उत्पादन के प्रारुप को अत्याधिक श्रम गहन रखने का लक्ष्य रहेगा तथा तकनीकी समायोजनों को इस-प्रकार से नियमित किया जायेगा कि वे रोजगार वृद्धि में सहायक हो सकें। योजना के दूसरे प्रारुप (1980-85) में गरीबी निवारण का लक्ष्य प्रमुख हो गया। फलतः लक्ष्यसमूह (target group) परक ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमों की क्रियान्विति को वरियता प्रदान की गई। छठी योजना में 2.54 प्रतिशत वार्षिकदर से श्रमशक्ति में बढ़ोतरी की परिकल्पना की गई थी तथा इसके अनुरुप, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रमों (IRDP) तथा राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (NREP) के जरिये योजनाकाल में सालाना 4.17 प्रतिशत की दर से रोजगार अवसर सृजित करने का लक्ष्य रखा गया था। उल्लेखनीय है कि इस योजनाकाल में पूर्णतः रोजगार प्राप्त व्यक्तियों के माप के लिये 'स्टेन्डर्ड परसन इयर' (SPY) नाम से एक सूचकांक भी बनाया गया। छठी योजना के रोजगार कार्यक्रमों का मूल्यांकन करते हुए सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90) के प्रारुप में यह बताया गया है कि 1984-85 के वर्ष तक देश में 186.705 मि. (एस.पी.वाय. के बराबर) रोजगार अवसरों का सृजन हुआ जबकि लक्ष्य 185.389 मि.(एस.पी.वाय.) का था। इस प्रकार छठी योजना में वार्षिक योजना वृद्धि दर 4.32 प्रतिशत आंकी गई थी। यह तथ्य गौर तलब है कि छठी पंचवर्षीय योजना में लोकप्रिय रोजगार कार्यक्रमों (Populist Employment Programmes) की एक अनवरत शृंखला का जन्म हुआ लेकिन इतना सब कुछ होते हुए भी सातवीं योजना के आरंभ के समय पांच वर्ष से अधिक आयुवर्ग के 9.2 मि. लोग रोजगार बाजार में अवसर तलाशते नजर आ रहे थे। इनके अतिरिक्त, सातवीं योजना काल में 39.38 मि. अतिरिक्त श्रमशक्ति के प्रवाहित होने से कुल 40.36 मि. (SPY) श्रम अवसरों के सृजन की आवश्यकता को प्रतिपादित किया गया था। कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों के विस्तार तथा विकास के अलावा, खनन, विनिर्माण (वृहद तथा लघु क्षेत्र) विद्युत, गृह निर्माण तथा सेवा क्षेत्र में औसतन 3.99 प्रतिशत सालाना दर से पूरे योजनाकाल में रोजगार अवसरों के सृजन की व्यूहरचना बनायी गई थी। इस योजना काल में अस्थाई प्रकृति के रोजगार अवसरों (Adhoc jobs) के सृजन हेतु 'जवाहर रोजगार योजना' आरंभ की गई। इसके अलावा समाज के कमजोर वर्गों के लिये निर्धारित आरक्षित पदों की भर्ती हेतु 'विशेष भर्ति अभियान' भी चलाये गये।

निःसंदेह, पिछले दो दशकों में बेरोजगारी निवारण के प्रति केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों की संवेदनशीलता बढ़ी है। लेकिन हमारी नियोजन प्रणाली की यह सबसे बड़ी कमजोरी रही कि रोजगार अवसरों के सृजन दायित्व को अर्थव्यवस्था के सार्वजनिक क्षेत्र के गले बांध दिया गया। केन्द्र सरकार के अधीन स्थापित 250 औद्योगिक प्रतिष्ठानों में से इस समय कोई 98 इकाइयों रुग्ण हैं तथा इनमें से 58 इकाइयां तो पूर्णतः घाटे में चल रही हैं और अधिक गहराई में जाने पर पता चलता है कि इन उद्योगों को जीवित रखने के लिये ऊंची ब्याज दर पर विदेशी कर्जा लेना पड़ा है। कर्मचारियों के वेतन भत्तों तथा विदेशी ऋणों से देश के राजकोषीय घाटे (Fiscal deficit) में अत्याधिक वृद्धि हुई तथा इसी कारण 90-91 में भारतीय अर्थव्यवस्था का आर्थिक संकट अपेक्षाकृत अधिक गम्भीर हो गया। इस प्रकार की बेलगाम राजकीय हस्तक्षेप की नीति के चलते भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रगतिशीलता उस समय बेनकाब हो गई जब देश को अपनी आर्थिक साख बचाने के लिये विदेशों में सोना गिरवी रखने पर विवश होना पड़ा। परम्परागत नियोजन प्रणाली में लचीलेपन की अनुपस्थिति के कारण ही विगत दो वर्षों से आठवीं पंचवर्षीय योजना की क्रियान्विति को टालते रहना पड़ा तथा वर्तमान सरकार की इन नीतियों में गरीबी तथा बेरोजगारी निवारण के लक्ष्य के स्थान पर राजकोषीय घाटे में कमी लाने तथा भुगतान संतुलन की स्थिति को ठीक करने के लक्ष्य अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण बन गये हैं। इन परिणामों को देखने से लगता है कि हमारी चार दशकों की योजना पद्धत्ति पूर्वाग्रहों से ग्रसित रही तथा बदलते आर्थिक परिवेश के अनुरुप भारतीय अर्थव्यवस्था को समायोजित होने का अवसर प्राप्त नहीं हो सका।

आठवीं योजना (1992-97) के बदलते तेवर

आठवीं पंचवर्षीय योजना में प्रस्तावित ग्रामीण गरीबी तथा बेरोजगारी निवारण की व्यूहरचना की चर्चा करने के पूर्व उन दिशा-सूचकों पर ध्यान देना जरुरी है जो भारतीय नियोजन प्रणाली में आधारभूत बदलाव आने की ओर संकेत करते हैं: 1. भारतीय अर्थव्यवस्था में व्यापक खुलापन लाने की आवश्यकता को स्वीकारना। 2. विश्व

स्तर पर हो रहे आर्थिक परिवर्तनों के अनुरुप हमारी अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तन लागू करना। 3. अर्थव्यवस्था के संचालन में प्रत्यक्ष राज्य हस्तक्षेप की बजाय बाजार शक्तियों की प्रासंगिकता को स्वीकार करना। 4. राज्य की विकास भूमिका को बाजार अर्थव्यवस्था की जरुरतों के संदर्भ में पुनः परिभाषित करना। 5. योजना आयोग को व्यापक आर्थिक नियोजन (Comprehensive Economic planning) के दायित्व से युक्त कर विश्व-स्तर पर होने वाले आर्थिक परिवर्तनों के अनुरुप दीर्घकालीन विकास दिशाओं को निर्धारणकर्त्ता एजेन्सी के रुप में मान्यता प्रदान करना। 6. साधनों के कुशलतम उपयोग को सुनिश्चित करने के लिये नियोजन के प्रत्येक स्तर पर (व्यष्टि से समष्टि) स्वशासी संगठनों को विकसित करना तथा योजना आयोग द्वारा उन्हें आवश्यकतानुसार मार्गदर्शन तथा सूचनाएं प्रदान करना। आठवीं पचवर्षीय योजना की विशेषताएं भारतीय नियोजन प्रणाली के बदले तेवरों का बोध कराती है। ऐसा लगता है कि अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र की तथा-कथित कल्याणकारी क्षमताओं के प्रति हमारा मोह भंग हो गया हो। अब सार्वजनिक क्षेत्र की जिम्मेदारी सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने अथवा जनसंख्या नियंत्रण स्वास्थ्य तथा शिक्षा जैसे दीर्घ महत्व की आवश्यकताओं को पूरा करने तक सीमित रहेगी। समाज के गरीबतम् व्यक्ति के संरक्षण के लिये नितान्त आवश्यक सरकारी हस्तक्षेप को छोड़, बाजार अर्थव्यवस्था के सिद्धान्त को ही एक क्रियात्मक सिद्धान्त के रुप में स्वीकार किया जायेगा अर्थात प्रत्येक सेवा की लागत के अनुसार ही कीमत वसूली जायेगी। सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति इस बदले रुख का मतलब यह होगा कि आठवीं पंचवर्षीय योजना एवं उसके आगे की दीर्घकालीन विकास व्यूह रचना में अनुदनों तथा राहतों (Subsidies and reliefs) की भूमिका लगभग नगण्य रहेगी, सार्वजनिक क्षेत्र को सरकारी संरक्षण से मुक्त होकर स्वावलम्बी बनना होगा।

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि आठवीं योजना के आरंभ होने के साथ भारतीय नियोजन प्रणाली रुढ़ीवादी समाजवाद का चोला उतार कर आर्थिक विकास के विवेक संगत तथा प्रतियोगी शक्तियों द्वारा निर्देशित मार्ग पर चल पड़ी है। आठवीं योजना में प्रस्तावित विकास कार्यक्रम की सफलता तथा बेरोजगारी निवारण के लक्ष्य की पूर्ति संभावनाओं को इस बदले संदर्भ में समझने की जरुरत है। राज्य निर्देशित ग्रामीण विकास कार्यक्रमों मे छलावे के स्थान पर अब बाजार प्रेरित कृषि तथा औद्योगिक विकास की समन्वित व्यूहरचना के जरिये विकास रश्मियों को गांव-गांव तक फैलाने का संकल्प लिया गया है।

पूर्ण-रोजगार लक्ष्य प्राप्ति की संभावनाएं

इस शताब्दी के अन्त तक 'पूर्ण रोजगार' आठवीं योजना की प्रमुख प्राथमिकता है। उद्देश्यपत्र के अनुसार, 'गरीबी निवारण तथा देश के सामाजिक एवं आर्थिक विकास हेतु मानवीय साधनों के प्रभावपूर्ण उपयोग के लिये बढ़ती हुई दर से रोजगार अवसरों का विस्तार किया जाना आवश्यक है। योजना आयोग का अनुमान है कि पिछले दो दशकों में 2.5 प्रतिशत वार्षिक दर से श्रमशक्ति की बढ़ोतरी हुई जबकि रोजगार अवसरों में केवल 2.2 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हो सकी। इसके कारण आठवीं योजनाकाल में बेरोजगारी की समस्या का दबाव बना रहेगा। यदि इस सदी की समाप्ति के साथ पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को प्राप्त करना है तो देश में तकरीबन 100 मि. रोजगार अवसरों के सृजन की जरुरत रहेगी।

द्वि-रुपी विकास परिदृष्य

पूर्ण रोजगार लक्ष्य से प्रेरित आठवीं योजना के उद्देश्य पत्र में आर्थिक विकास की दो संभावित दिशाएं सुझाई गई हैं। योजना के लिये आवश्यक वित्तीय साधनों के आकलन को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय आय में 6 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर का 'एक उच्च विकास परिदृष्य (Higher growth scenario) सुझाया गया है। इस उच्च आर्थिक वृद्धि दर को प्राप्त करने के लिये आठवीं योजना काल में कुल विनियोजन 8,56,000 करोड़ रुपये का करना होगा। 23 प्रतिशत राष्ट्रीय बचत दर तथा 24.6 प्रतिशत की औसत विनियोग दर प्राप्ति की मान्यता पर आधारित इस विकास परिदृष्य से सालाना 2.8 प्रतिशत रोजगार अवसरों के सृजन की संभावना व्यक्त की गई है। दूसरी तरफ, 5.6 प्रतिशत की दर से राष्ट्रीय आय में वार्षिक वृद्धि का एक निम्न विकास दर परिदृष्य (Lower growth rate scenario) है जिसके अन्तर्गत 2.6 प्रतिशत वार्षिक दर से रोजगार अवसर सृजित होने की कल्पना की गई है। इस विकासपथ की सफलता हेतु आठवीं योजना में 7,92,000 करोड़ रुपये का विनियोजन (निजी तथा सार्वजनिक) किया जाना आवश्यक होगा। योजना हेतु प्रस्तावित वित्तीय प्रसाधनों की प्राप्ति के लिये 21.6 प्रतिशत (GDP का अनुपात) की आन्तरिक औसत बचत दर तथा 1.4 प्रतिशत बाह्य बचत दर (निर्यात अतिरेक) प्राप्त करनी होगी तथा विनियोग दर 23 प्रतिशत से कम न रहने पर ही योजना के लक्ष्यों को प्राप्त करना संभव हो सकेगा। विकास के दोनों ही परिदृष्यों की सफलता हेतु 13.6

प्रतिशत वार्षिक दर से हमारे निर्यातों में वृद्धि होना नितान्त आवश्यक होगा।

आठवीं योजना में उपर्युक्त द्वि-रुपी विकास परिदृश्यों का निरुपण अपने आप में एक महत्वपूर्ण बदलाव का संकेत है। इस योजना में भी गरीबी निवारण के लक्ष्य को रोजगार अवसरों के सृजन, भूमि सुधारों की क्रियान्विति तथा आवासीय निर्माण कार्यक्रमों के विस्तार से सम्बद्ध किया गया है। रोजगार के सृजन की व्यापक जिम्मेवारी कृषिक्षेत्र पर ही डाली गई है। फसलों के प्रारुप में व्यापक बदलाव तथा फल एवं शाक उत्पादन से सम्बद्ध कृषि क्रियाओं के विविधिकरण द्वारा हमारे कृषि क्षेत्र में प्रचलित अर्ध बेकारी की समस्या का हल खोजा जायेगा। दूसरी तरफ, रेशम कीट पालन, मत्स्य, मुर्गीपालन, दुग्ध उत्पादन जैसे कृषि सहायक व्यवसायों को प्रोत्साहित करके तथा कृषि उत्पादों के निर्यातों को बढ़ावा देकर रोजगार के अतिरिक्त अवसरों के विस्तार का लक्ष्य भी रखा गया है।

द्वितीय, व्यावसायिक तथा औद्योगिक उदारीकरण की नीति के जरिये आठवीं योजना में निजी क्षेत्रों में ही अधिकाधिक संख्या में रोजगार अवसर सृजित होने की संभावनाएं बलवती दिखाई दे रही हैं। एकाधिकार नियंत्रण तथा प्रतिबन्धात्मक कानून (MRTPA) की समाप्ति तथा विदेशी पूंजी विनियोजन पर से प्रतिबन्ध हटा लेने के पश्चात् निजी क्षेत्र में पूंजी का प्रवाह तीव्र होगा जिससे न केवल नये उद्योग स्थापित हो सकेंगे अपितु पूराने उद्योगों का विस्तार भी संभव होगा।

तृतीय, रोजगार संभावनाओं को विकसित करने के लिये योजनाकाल में सेवाक्षेत्र (service sector) के निजीकरण को प्रोत्साहित किया जाना भी प्रस्तावित है। परिवहन तथा संचार सेवाओं को सरकारी नियंत्रणों के मकड़जाल से मुक्त करके इनमें प्रतियोगिता उत्पन्न करना तथा कुशलता लाना आठवीं योजना की रोजगार व्यूहरचना का एक महत्वपूर्ण अंग है। इससे भी एक कदम आगे बढ़के विद्युत उत्पादन तथा वितरण के क्षेत्र में भी निजी क्षेत्र के प्रवेश की खुली छुट दिये जाने की संभावनाएं भी व्यक्त की गई हैं। निजी उद्यम को सेवा क्षेत्र में प्रवेश देने से निचलेस्तर पर नव-उद्यमी वर्ग का उदय होगा, अनुदानित सेवाओं के बजाय लागत मूल्य पर सेवाएं उपलब्ध करवायी जा सकेंगी। निजी उद्यम को प्रोत्साहित करने की इस मंशा से आर्थिक विकेन्द्रीकरण के लक्ष्य को भी प्राप्त करना संभव हो सकेगा तथा ग्रामीण क्षेत्रों में विकास की आधारभूत सुविधाओं का विस्तार भी होगा।

अन्त में, योजना आयोग के एक अनुमान के अनुसार ग्रामीण रोजगार सृजन के विभिन्न कार्यक्रमों पर हमारे देश में प्रतिवर्ष 6500-7000 करोड़ रुपये खर्च किये जाते हैं। इतनी बड़ी धनराशि को किसी एक केन्द्रीय एजेन्सी अथवा योजना के तहत एकत्रित करके जिला अथवा ब्लाक स्तरीय नियोजन प्रणाली के मार्फत खर्च किये जाने की व्यवस्था करनी होगी ताकि वास्तविक गरीब को इस प्रकार की रोजगार योजनाओं का लाभ प्राप्त हो सकें।

रोजगार नीति की अन्तर्निहित मान्यताएं

1. योजना काल में श्रमशक्ति की वृद्धि दर 2.2 प्रतिशत वार्षिक बनी रहे।

2. कृषिक्षेत्र की रोजगार लोच (employment elasticity) 1977-83 के स्तर को पुनः प्राप्त कर सकें।

श्रमशक्ति की वृद्धि दर को नियंत्रित रखने के उद्देश्य से आठवीं योजना में आम सहमती पर आधारित 'राष्ट्रीय जनसंख्या नीति' बनाये जाने पर जोर दिया गया है। यदि दृढ़ राजनैतिक इच्छाशक्ति से परिवार नियोजन कार्यक्रमों को क्रियान्वित किया गया तो इस बात की पूर्ण संभावना बनती है कि योजना काल में जन्मदर 30.5 (प्रति हजार) से घटकर 26 (प्रति हजार) तक पहुंच जाये। शिक्षा प्रसार के राष्ट्रव्यापी कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से लागू करके तथा महिलाओं के लिये रोजगार के अधिकाधिक अवसर जुटाकर जनसंख्या वृद्धि पर रोक लगाने की व्यूहरचना भी इस योजना में बनायी गई है। संरचनात्मक परिवर्तनों के इस दौर में उत्पादन की श्रम गहन तकनीकों को अपनाकर रोजगार लोच में वृद्धि करना आसान नहीं होगा। अतः कृषि क्षेत्र के सहायक व्यवसायों औद्योगिक क्रियाओं तथा सेवा क्षेत्र की उन्नति के गंभीर प्रयासों से ही 10 मि. सालाना दर से रोजगार अवसरों का विस्तार करना संभव हो सकेगा। इसके अलावा, देश के पूर्वी भागों तथा सूखा क्षेत्रों में कृषि तथा फल एवं शाक उत्पादन क्रियाओं का व्यापक विस्तार करना नितान्त आवश्यक है ताकि 78-83 की अवधि में प्रचलित रोजगार लोच स्तर को पुनः प्राप्त किया जा सके।

योजना के बदले तेवरों की सार्थकता

ईस निष्कर्ष पर किसी भी प्रकार के शक की गुंजाइश नहीं है कि भारत की आठवीं पंचवर्षीय योजना परम्परागत समाजवादी मॉडल से हट कर बनने जा रही है। राज्य के अनियंत्रित हस्तक्षेप के युग

की समाप्ति का बिगुल बज चुका है। लाइसेन्स तथा परमिट की भ्रष्टाचार के विष से सिंचित अफसरशाही की बेड़ियां तोड़कर हमारी अर्थव्यवस्था व्यापक विश्व-अर्थव्यवस्था का अंग बनने की ओर अग्रसर हो चुकी हैं। यद्यपि आठवीं योजना का प्रस्तावित विकास पथ आशाओं के अवसरों से भरा पड़ा है, किन्तु विकास के इस दशक में अनेक खतरों से सावधान रहने की आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता।

प्रथम, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के व्यावसायिक हथकन्डों से हमें सदैव सजग रहना होगा। योजनाकारों को यह भी याद रखना होगा कि उच्च आर्थिक वृद्धि दर को प्राप्त कर लेने से भारत जैसे विकासशील देश में गरीबी तथा आय की असमानताएं स्वत: समाप्त नहीं हो सकती। बाजार शक्तियों पर आधारित आठवीं योजना का उद्देश्य पत्र आय तथा संपत्ति की समानताओं की आवश्यकता के प्रति मौन है। द्वितीय लघु तथा कुटीर उद्योगों के विकास के मार्फत आर्थिक समानता तथा रोजगार अवसरों के विस्तार की सुनिश्चित नीति न जाने क्यों योजना आयोग की दृष्टि से ओझल रही है ? तृतीय अर्वाचीन विश्व में समृद्ध राष्ट्र संरक्षण तथा द्वि-पक्षीय व्यापार नीतियों के समर्थक बनते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में, 13-14 प्रतिशत की वार्षिक दर से हमारे निर्यातों में वृद्धि कैसे संभव होगी यह भी यह विचारणीय प्रश्न है। आठवीं योजना का समूचा ताना-बाना निर्यात वृद्धि की इस उच्च दर के साथ निकटता से जुड़ा हुआ है। अत: देश को अपनी निर्यात दिशाओं की संरचना में विश्व-बाजार मांग के अनुरुप परिवर्तन लाने होंगे। चौथे, पूर्ण रोजगार लक्ष्य की प्राप्ति के रास्ते की सबसे बड़ी चुनौती हमारी जनसंख्या वृद्धि दर है। यदि आम सहमति पर आधारित राष्ट्रीय जनसंख्या नीति को जातीय तथा धार्मिक संकीर्णताओं की विधियों से बाहर निकालना संभव हो गया तो आठवीं योजनाकाल की यह सबसे बड़ी सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक जीत होगी। आठवीं योजना के समक्ष अनेक चुनौतियां है क्योंकि विगत चार दशकों के परम्परागत राज्य निर्देशित विकास पथ का परित्याग किया जा रहा है। लेकिन यदि हमें एक नये भविष्य का निर्माण करना है तो कालातीत कानूनी मकड़जाल का चोला उतार फेंकना ही होगा ताकि स्वतंत्र चिन्तन के गर्भ से नये सोच का जन्म हो सके तथा सही अर्थों में हमारा देश एक कल्याणकारी राष्ट्र बन सकें।

व्याख्याता (चयनित वेतन) अर्थशास्त्र
एम.एल. वर्मा
राजकीय स्वायत्त शासी महाविद्यालय
भीलवाड़ा (राज.) 311001

पृष्ठ 31 का शेष

प्रवृत्ति पनप रही है। गैर उत्पादक ऋण की अदायगी की सम्भावनायें न्यून होती हैं। इसके साथ ही अनुदान की अवधारणा भ्रष्टाचार की पोषक सिद्ध हुई है। बैंकों में भ्रष्टाचार के बढ़ते कदम रोकने के लिये अनुदान समाप्ति सहायक होगा। अनुदान के स्थान पर ब्याज दर में कमी करके पात्र वर्ग की सहायता की जाये तभी यह राहत वास्तविक व्यक्तियों तक सीधे पहुंचेगी।

नियोजन पूर्व काल में ऋणग्रस्तता गरीबी का पर्याय समझा जाता था। वर्तमान में, ऋणग्रस्तता और सम्पन्नता का मानदण्ड बन गया है। विचारधारा में इस बदलाव का कारण है — 'ऋण का परिवर्तित उद्देश्य'। समाज में बैंकों की सक्रिय भागीदारी से पूर्व निजी व्यक्तियों द्वारा ऋण देने का मात्र उद्देश्य था — अधिकतम लाभार्जन। उस समय ऋणग्रस्तता का कारण था लालची ऋणदाता की ऊंची ब्याज दर और कठिन शर्तें। अब बैंकों और विकास संस्थाओं का प्राथमिक उद्देश्य है – ऋणग्राही का आर्थिक विकास। वर्तमान ऋण भार का कारण है- विकास के बढ़ते कदम।

साथी खाना मोहल्ला
चन्दौसी-202412
जिला मुरादाबाद

पूर्वी उत्तर प्रदेश का आर्थिक पिछड़ापन

□ डॉ० ईश्वर दत्त सिंह □

यदि हम उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र में विद्यमान आर्थिक स्थिति का अवलोकन करें तो बहुमुखी विकास के बावजूद इस क्षेत्र की दशा सापेक्ष दृष्टि से दयनीय है। उत्तर प्रदेश के अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा जनसंख्या का ऊँचा प्रतिशत, प्रति वर्ग कि.मी. अधिक जनसंख्या, कृषि पर अत्याधिक जनसंख्या की निर्भरता, गैर-कृषि रोजगार और बहुत नीचा जीवन स्तर इस क्षेत्र के स्थायी चरित्र बने हुए हैं।

उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र में जनसंख्या तथा जनसंख्या का घनत्व सर्वाधिक है। इस क्षेत्र में प्रति व्यक्ति खेती की जमीन अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा कम है। किसानों का उत्पादन तथा उससे प्राप्त होने वाला मूल्य भी सभी क्षेत्रों की अपेक्षा कम है। इसके अतिरिक्त पूर्वी क्षेत्र में कुल श्रम शक्ति में बेकारों एवं अर्ध-बेकारों का प्रतिशत अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक है।

किसी भी क्षेत्र के आर्थिक विकास के स्तर को जानने का एक संयुक्त संकेतक है 'प्रति व्यक्ति आय'। लेकिन जिला/क्षेत्र के अनुसार प्रति व्यक्ति आय सम्बन्धी आंकड़े उपलब्ध न होने के कारण 'प्रति व्यक्ति शुद्ध घरेलू उत्पत्ति के मूल्य' के आकड़ों के सहारे हम आर्थिक विकास के स्तर को माप सकते हैं। चालू कीमतों पर वर्ष 1980-81 में पूर्वी क्षेत्र में शुद्ध घरेलू उत्पत्ति का मूल्य प्रति व्यक्ति 611 रुपये था जो प्रदेश के औसत (793 रुपये 65 पैसे) से बहुत कम है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र में मुख्य धंधा खेती है लेकिन इस क्षेत्र में खेती की दशा शोचनीय है। औद्योगिक उत्पादन की दृष्टि से भी उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र की हालत नाजुक है। वर्ष 1981-82 में औद्योगिक उत्पत्ति का सकल मूल्य पूर्वी क्षेत्र में प्रति व्यक्ति औसतन 155 रुपये था जबकि प्रदेश स्तर पर यह औसतन 338 रुपये रहा। कुल मिलाकर उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र की आर्थिक दशा एक चिन्ता का विषय है और इसके नियोजित आर्थिक विकास की ओर विशेष ध्यान देना अपेक्षित है।

सर्वथा उपेक्षित क्षेत्र

पूर्वी उत्तर प्रदेश के लोगों के साहस और गरिमा की बातें बहुत की जाती हैं और इस क्षेत्र के विकास पर विशेष ध्यान देने की चर्चाएं होती हैं, लेकिन जाने-अनजाने यह क्षेत्र हमेशा उपेक्षा का शिकार रहा है। सर्वविदित है कि सन् 1857 से लेकर 1942 तक के स्वतन्त्रता संग्राम में पूर्वी उत्तर प्रदेश के निवासियों ने एक अद्भुत साहस का परिचय देते हुए ब्रिटिश साम्राज्य की नींव हिला दी थी। परिणामस्वरूप यहां की जनता न केवल ब्रिटिश सरकार के कोप का शिकार हुई बल्कि इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था के प्रति भी अंग्रेजों की नीति विभेदात्मक रही। यहां की आधारिक संरचना और आर्थिक वातावरण को सुदृढ़ करने के प्रति अंग्रेज सर्वथा उदासीन रहे।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भी लगभग 15 वर्षों तक इस क्षेत्र की जर्जर अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने हेतु विशेष प्रयास नहीं किये गये। सर्वप्रथम जून 1962 में पूर्वी उत्तर प्रदेश में व्याप्त निर्धनता के बारे में लोकसभा में जोरदार चर्चा हुई। तत्कालीन प्रधानमन्त्री स्वर्गीय पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने इस क्षेत्र के विकास के सम्बन्ध में सुझाव देने के लिए एक आयोग के गठन की आवश्यकता महसूस की। फलस्वरूप श्री वी.पी. पटेल की अध्यक्षता में एक संयुक्त अध्ययन दल की नियुक्ति की गई जिसे 'पटेल आयोग' के नाम से जानते हैं। इस अध्ययन दल ने पूर्वी उत्तर प्रदेश के मात्र चार जिलों (गाजीपुर, आजमगढ़, देवरिया और जौनपुर) की आर्थिक और सामाजिक दशा के बारे में जनवरी 1964 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था और इन जिलों के विकास हेतु अपने सुझाव दिए थे।

उपर्युक्त चार जिलों की स्थिति के अध्ययन के उपरान्त लोगों की आर्थिक स्थिति के सुधार हेतु पटेल आयोग ने जो सुझाव दिए थे, मुख्यत: वे कृषि एवं औद्योगिक विकास के बारे में थे। उनकी एक झलक यहां पर देना समीचीन है। आयोग के अनुसार वर्ष 1961 में इन चार जिलों में प्रति व्यक्ति औसत आय 172 रुपये थी जबकि उत्तर प्रदेश में प्रति व्यक्ति औसत आय 261 रुपये 33 पैसे और प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय 330 रुपये थी। "आयोग का यह मत था कि ऐसे प्रयासों की आवश्यकता है जिनसे इन जिलों के लोगों की प्रति व्यक्ति आय 12 वर्षों में दूनी हो जाय। इससे यह समझा जा सकता है कि पटेल आयोग की संस्तुतियों के अनुसार यदि शत-प्रतिशत कार्य हुआ होता और आयोग द्वारा अपेक्षित दर से लोगों की आय बढ़ी होती तो 1970 के दशक के पूर्वार्ध में जाकर इन जिलों में प्रति व्यक्ति आय उस प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय के समकक्ष या उससे कुछ ही अधिक हो पाती जो 1961 में थी। व्यवहार में ऐसा नहीं हुआ। स्थिर कीमतों के आधार पर 1960-61 से 1970-71 तक प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय में 41 रुपये की वृद्धि हुई थी। जबकि उत्तर प्रदेश में प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि केवल 30 रुपये 50 पैसे की हो पाई थी। पूर्वी उत्तर प्रदेश में तो यह वृद्धि

और भी कम थी।

कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए आयोग ने रासायनिक खाद के प्रयोग को बढ़ाने, सिंचाई व्यवस्था को सुदृढ़ करने और साथ ही साथ बाढ़ नियन्त्रण की आवश्यकताओं पर बल दिया था। सिंचाई के बारे में आयोग का सुझाव था कि 1970-71 तक 75 प्रतिशत भूमि पर सिंचाई की व्यवस्था हो जानी चाहिए। सरकारी तथा निजी नलकूप, पम्पसेट, रहट आदि की व्यवस्थाओं को बढ़ाने हेतु अधिक रकम खर्च करने तथा लोगों को अधिक सहायता एवं अनुदान देने की आयोग ने सिफारिश की थी। आज भी स्थिति यह है कि खेती की जाने वाली जमीन के लगभग 55 प्रतिशत क्षेत्र पर ही सिंचाई की व्यवस्था हो पाई है। औद्योगिक विकास को बढ़ावा देने हेतु पटेल आयोग का सुझाव था कि उपर्युक्त चार जिलों में सार्वजनिक क्षेत्र में कुछ बड़े उद्योग स्थापित किए जाएं जैसे केन्द्रीय सरकार का भारी मशीनों का एक कारखाना, मशीनी औजारों तथा मशीनों के पार्ट्स की इकाइयाँ, छोटे ट्रेक्टर का एक कारखाना, एक या दो गोला-बारूद के कारखाने, पम्प और बिजली की मोटर बनाने के कारखाने आदि। पटेल आयोग का मत था कि इस क्षेत्र में कपड़ा, जूता, साबुन, बर्तन, कृषि औजार इत्यादि की मांग भविष्य में अधिक होगी, इसलिए इनका उत्पादन करने के लिए मध्यम और बड़े कारखाने खोले जा सकते हैं।

पटेल आयोग की संस्तुतियों के आधार पर वर्ष 1964-65 में गाजीपुर, देवरिया, आजमगढ़ और जौनपुर जिलों में विकास के कार्यक्रमों की शुरुआत हुई। 1966-67 में बलिया और बस्ती जनपदों को भी इसमें शामिल किया गया। लेकिन कुल मिलाकर यदि देखा जाय तो इस विशेष कार्यक्रम के साथ भी वही कहावत चरितार्थ हुई कि 'खोदा पहाड़ और निकली चुहिया'। पटेल आयोग की संस्तुतियों के क्रियान्वयन हेतु केन्द्र सरकार ने केवल 1964-65 में मात्र 4 करोड़ रुपये की अतिरिक्त आर्थिक सहायता प्रदान की और इसके बाद केन्द्र से कोई भी सहायता नहीं मिली। उत्तर प्रदेश सरकार की आर्थिक स्थिति डाँवाडोल रहने के कारण पटेल आयोग की अधिकांश संस्तुतियाँ कागज पर ही रहीं और निर्धारित समय के अन्दर लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं हुई।

कमजोर आधारित संरचना

अंग्रेजों की विभेदात्मक नीति के कारण पूर्वी उत्तर प्रदेश में आधारित संरचना और आर्थिक वातावरण की अवहेलना तो हुई ही, अपनी सरकार बनने के बाद भी इस क्षेत्र की आधारित संरचना और आर्थिक वातावरण को सुदृढ़ करने की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। अन्य बातों के अलावा उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र के अल्प विकास और सापेक्षिक रूप से अधिक पिछड़ेपन का मुख्य कारण यहाँ की आधारिक संरचना का कमजोर होना है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र की सापेक्ष जनसंख्या के बोझ को ध्यान में रखकर यदि इस क्षेत्र की कुछ मुख्य आधारित संरचना सम्बन्धी सुविधाओं को देखें तो स्थिति निम्नवत है—

संकेतक	पूर्वी क्षेत्र	पश्चिमी क्षेत्र	मध्य क्षेत्र	बुन्देलखण्ड क्षेत्र	पहाड़ी क्षेत्र	उत्तर क्षेत्र
1. जनसंख्या का प्रतिशत	37.6	35.5	17.6	4.9	4.9	4.4
2. सड़क की लम्बाई (प्रति लाख जनसंख्या) कि.मी. में	47.4	44.1	50.1	83.6	125.4	57.6
3. विद्युत उपभोग (प्रति हेक्टेयर) कि. वाट में	132.6	223.4	68.5	24.6	30.6	137.4
4. व्यापारिक बैंकों की शाखाएं (प्रतिशत)	28.1	39.7	20.2	4.1	7.9	100
5. पोस्ट आफिस (प्रतिशत)	36.9	29.5	14.8	6.0	12.8	100
6. टेलीफोन एक्सचेंज (प्रतिशत)	30.0	36.0	18.5	5.5	10.0	100

उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र में 37.6 प्रतिशत जनसंख्या रहती है। इस क्षेत्र में जनसंख्या का घनत्व 485 है जो प्रदेश के औसत सहित अन्य क्षेत्रों की तुलना में सर्वाधिक है। इस आधार पर जनसंख्या के बोझ से लदे हुए उत्तर प्रदेश के पूर्वी क्षेत्र में आधारिक संरचना सम्बन्धी सुविधाएं अधिक होनी चाहिए और पिछड़ेपन के परिप्रेक्ष्य में तो इसका इससे अधिक होना अपेक्षित है। उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि प्रति एक लाख जनसंख्या पर सड़कों की लम्बाई पूर्वी क्षेत्र में प्रदेश के स्तर से कम है जबकि जनसंख्या के बोझ को ध्यान में रखते हुए अधिक होना चाहिए। प्रति हेक्टेयर विद्युत उपयोग पूर्वी उत्तर प्रदेश में 132.6 कि.वाट है, जबकि प्रदेश के लिए यह औसत 137.4 कि.वाट है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश की तुलना में तो पूर्वी उत्तर प्रदेश में प्रति हेक्टेयर विद्युत उपभोग बहुत ही कम है। जनसंख्या के बोझ को ध्यान में रखकर यदि देखा जाय तो पूर्वी क्षेत्र में बैंकों तथा संचार और संवाद वाहन की सुविधा भी कम हैं।

आधारिक संरचना की सुविधाओं की अपर्याप्तता के कारण विकास की व्यूह रचना में उत्तर प्रदेश का पूर्वीक्षेत्र उपेक्षित रहा है। देश में खाद्यान्न तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति को कम समय में अधिक से अधिक बढ़ाने के उद्देश्य से गहन उत्पादन कार्यक्रमों हेतु प्रायः ऐसे राज्य एवं क्षेत्र चुने गए जहां आधारिक संरचना और

आर्थिक वातावरण की सुदृढ़ता पहले से थी। विकास की इस प्रक्रिया में अपेक्षाकृत विकसित राज्यों एवं क्षेत्रों में आर्थिक वातावरण और सुदृढ़ होता गया जबकि पिछड़े क्षेत्र प्रायः उपेक्षित रहे। आर्थिक वातावरण की सुदृढ़ता विनियोजनों को अधिक फलदायी बनाती है और उत्पन्न की जाने वाली वस्तुओं की प्रति इकाई लागत में कमी लाने में सहायक होती है। स्वभावतः ऐसी परिस्थिति में व्यक्तिगत उद्यमी भी उद्योगों की स्थापना हेतु या अन्य क्षेत्रों में विनियोजन बढ़ाने हेतु उन्हीं क्षेत्रों में ज्यादा आकृष्ट हुए जहां आर्थिक वातावरण की सुदृढ़ता थी। इस दौड़ में उत्तर प्रदेश का पूर्वी क्षेत्र पीछे छूटता गया और डर है कि वर्तमान सरकार की आर्थिक क्षेत्र में उदारवादी नीति के करण यदि इस क्षेत्र की ओर विशेष ध्यान न दिया गया तो यह कहीं और न पीछे छूट जाय।

विकेन्द्रित नियोजन एवं जिला योजनाएं

इधर के वर्षों में पिछड़े क्षेत्रों के आर्थिक विकास हेतु विकेन्द्रित नियोजन प्रणाली एवं जिला योजनाओं को बहुत महत्व दिया जा रहा है। योजनाओं का मत है कि 'जिला योजनाओं के माध्यम से राष्ट्रीय एवं प्रदेशीय उद्देश्यों को धरती पर लाना अधिक सम्भव हो जाता है।..... एक ओर जहां जिला योजनाएं आंचलिक असन्तुलन को दूर करती हैं, दूसरी ओर वहीं व्यक्तिगत आर्थिक विषमताओं के उन्मूलन करने का भी प्रयास करती है।' स्थानीय नियोजन के माध्यम से आर्थिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों के उत्थान के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय योजना आयोग ने प्रथम पंचवर्षीय योजना काल में ही जिला उद्भव पर बल दिया। द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ योजनाओं में भी जिला स्तर पर योजना अभ्यास को महत्व दिया गया। पांचवी योजना में केन्द्रीय योजना आयोग ने सामाजिक उपयोग के नियोजन हेतु जिले को इकाई बनाने का निर्देश दिया। पांचवीं योजना तक जिला स्तर पर जो योजनाएं बनाई गईं वे जिलों की आवश्यकताओं के आधार पर बनीं और संसाधनों को ध्यान में रखने के कारण वे केवल मांगों का चार्टर बनकर रह गई और जिला योजनाएं प्रदेश की योजना का अंग नहीं बन पायीं।

उत्तर प्रदेश में 'जिले' को विकेन्द्रित नियोजन की इकाई बनाने के निर्माण के साथ समस्त योजनाओं को दो भागों में— जिला सेक्टर तथा राज्य सेक्टर में विभक्त किया गया है। विभाजन का आधार यह है कि योजनाएं जो सामान्यतया एक जिले को लाभान्वित करती हैं और जिनके नियोजन, निर्णय एवं कार्यान्वयन जनपद के जनप्रतिनिधियों एवं अधिकारियों पर निहित हैं वे जिला सेक्टर में हैं और जो एक से अधिक जिलों को लाभान्वित करते हैं, वे राज्य सेक्टर में आती हैं। इस फार्मूले के अन्तर्गत अलग-अलग क्षेत्रों में विद्यमान पिछड़ेपन के आधार पर उचित बल देकर अधिक धनराशि की व्यवस्था की जाती है। परिव्यय के निर्धारण की उपर्युक्त प्रक्रिया से यह आशा की जाती है कि विभिन्न जिलों की आर्थिक स्थिति में पाई जाने वाली विषमताएं क्रमशः कम होती जाएंगी और सन्तुलित विकास सम्भव होगा। लेकिन यदि हम जिला स्तर पर बनाई जाने वाली जिला योजनाओं को देखें तो उनका सन्दर्भ मुख्यतः वित्तीय दिखाई पड़ता है। कितनी धनराशि का प्रवाह निर्धन एवं पिछड़े वर्गों के उत्थान हेतु किया गया और कितनी धनराशि आधारिक संरचना के सुधार हेतु व्यय की गई यही इन योजनाओं की सफलता का मापदण्ड दिखाई पड़ता है। लेकिन विभिन्न कार्यक्रमों पर धनराशि के व्यय के सम्बन्ध में आम धारणा और बहुत सत्यता यह है कि इनका लाभ कुछ ही लोगों को मिलता है। बीस सूत्री कार्यक्रमों के कार्यान्वियन में भी कागजी आंकड़ों का मायाजाल तो रोचक अवश्य लगता है लेकिन गांवों में स्थिति अपेक्षित ढंग से नहीं सुधरी है। तमाम योजनाओं का कार्यान्वियन यदि ठीक ढंग से और ईमानदारी से किया जाता तो गरीब जनता का शोषण न होता।

कुछ सुझाव

पूर्वी उत्तर प्रदेश के पिछड़ेपन को दूर करने हेतु अब तक का सबसे बड़ा प्रयास पटेल आयोग का गठन रहा है और इस आयोग की संस्तुतियों को समय से पूरा करने के लिए कितनी तल्लीनता बरती गई जिसका जिक्र किया जा चुका है। इसके बाद भी इस क्षेत्र के विकास हेतु चर्चाएं बहुत की गईं और आज भी इस विषय पर सेमिनारों, सम्मेलनों और गोष्ठियों का सिलसिला जारी है। लेकिन पूर्वी उत्तर प्रदेश की सापेक्ष दशा में सुधार जितना अपेक्षित था उतना हुआ नहीं। अब प्रश्न उठता है कि उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल का विकास सम्भव कैसे होगा ? विकेन्द्रित नियोजन प्रणाली, जिला योजनाएं, ब्लाक योजनाएं और फिर गांव के स्तर पर योजनाओं का निर्माण तथा उनका समुचित कार्यान्वियन इस प्रश्न का उत्तर है।

उसी प्रकार पूर्वी उत्तर प्रदेश की पिछड़ी अर्थव्यवस्था को अन्य विकसित क्षेत्रों के समकक्ष लाने हेतु केन्द्र द्वारा पोषित विशेष उप-योजनाओं की आवश्यकता है। इस क्षेत्र की आधारिक संरचना और आर्थिक वातावरण को सुदृढ़ बनाए बगैर इसका विकास सम्भव नहीं है। इसे सुदृढ़ बनाने हेतु केन्द्र द्वारा विशेष प्रयास इसलिए अपेक्षित है कि दूसरे क्षेत्रों के समकक्ष लाया जाये। भूखे एवं नंगे रहकर भी यहां के लोगों ने देश की समृद्धि के नाम पर खुशियां मनाई हैं। वास्तव में सामाजिक न्याय का तकाजा तो यह है कि विकसित राज्यों व क्षेत्रों की लागत पर भी इस क्षेत्र के उत्थान हेतु विशेष प्रयास हों। इस क्षेत्र के प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों को ध्यान में रखकर ऐसी उपयोजनाओं को बनाने एवं कार्यन्वित करने की आवश्यकता है जिनसे सभी लोगों को लाभकारी उद्यम एवं रोजगार उपलब्ध हो सके।

अध्यक्ष अर्थशास्त्र विभाग
काशी विद्यापीठ, वाराणसी

गढ़वाल मण्डल के विकास में गंगा यमुना ग्रामीण बैंक का योगदान

□ डा० बृजमोहन परगाई □

□ डा० पी० के० पाठक □

किसी भी देश के सन्तुलित आर्थिक विकास में बैंकिंग उद्योग का महत्वपूर्ण स्थान होता है। उत्पादन के घटकों में पूँजी एक प्रमुख तत्व है भारत जैसे विकासशील देश में पूंजी की कमी विकास में मुख्य बाधक तत्व है और पूँजी की कमी को दूर करने में वित्तीय संस्थाओं का योगदान सदैव महत्वपूर्ण रहा है। आज भी भारतीय अर्थव्यवस्था में ग्रामीण क्षेत्र का विशिष्ट योगदान है। कुल जनसंख्या का 76.27 प्रतिशत भाग गांवों में निवास करता है। ग्रामीण क्षेत्र प्रधानतः कृषि पर निर्भर है किन्तु कृषि उपज ग्रामीण आवश्यकताओं के अनुरुप न होने से ग्रामीण क्षेत्र अत्यन्त पिछड़ गये हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में बैंक एवं सहकारिता के माध्यम से निर्बल वर्ग के उत्थान के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गई है। ग्रामीण क्षेत्रों में साख की मांग मुख्य रूप से खेती के उपकरण तथा हल बैल खरीदने, बागवानी, पशुपालन, वानिकी, डेयरी, मुर्गीपालन, मत्स्यपालन, सुअर पालन आदि के लिये होती है। इसके अतिरिक्त हस्तशिल्प, कताई बुनाई सम्बन्धी कुटीर उद्योगों की स्थापना के लिए गोबर गैस संयंत्र लगाने, रसायनिक एवं कीटनाशक खाद क्रय करने और कृषि उपज के भण्डारण के लिए भी ग्रामीण साख की मांग सदैव बनी रहती है।

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में संस्थागत और निजी वित्तीय संस्थाओं द्वारा साख सुविधाएं प्रदान की जाती रही हैं। संस्थागत वित्तीय संस्थाओं में सरकारी, सहकारी, वाणिज्यक बैंक और बीमा कम्पनियाँ वित्त प्रदान करती हैं जबकि निजी संस्थाओं में जमींदार, कृषि महाजन, व्यावसायिक महाजन, व्यापारी, सम्बन्धी/दोस्त का मुख्य योगदान है। वर्ष 1961 में ग्रामीण साख के क्षेत्र में संस्थागत ऋण 7.3 प्रतिशत था जबकि निजी संस्थाओं द्वारा 92.7 प्रतिशत ऋण दिया गया। वर्ष 1971 में संस्थागत ऋण 18.4 प्रतिशत तथा निजी संस्थाओं का ऋण 81.6 प्रतिशत था। वर्ष 1981 में यह प्रतिशत क्रमशः 31.7 और 68.3 हो गया। स्पष्ट है कि संस्थागत ऋणों में वृद्धि होने से निजी संस्थाओं द्वारा दिये जाने वाले ऋण का प्रतिशत गिरता जा रहा है। उत्तर प्रदेश में किसानों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सहकारी संस्थाओं में उ०प्र० सहकारी बैंक लि०, केन्द्रीय जिला सहकारी बैंक तथा ग्रामीण सहकारी साख समितियों द्वारा ऋण प्रदान किया जाता है। रिजर्व बैंक आफ इण्डिया बुलेटिन अक्टूबर 1990 के अनुसार भारत में 196 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक तथा उनकी 14090 शाखायें हैं। उत्तर प्रदेश में 40 ग्रामीण बैंक हैं जो कि 59 जिलों की 2990 शाखाओं में विस्तृत हैं।

गढ़वाल मण्डल - जनसंख्या और क्षेत्रफल

उतर प्रदेश का पर्वतीय क्षेत्र राज्य के तीन पिछड़े क्षेत्रों में से एक है। उसमें भी गढ़वाल मण्डल अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति और विशेष समस्याओं के कारण आर्थिक और औद्योगिक दृष्टि से प्रदेश के अन्य क्षेत्रों की तुलना में अधिक पिछड़ा हुआ है। क्षेत्रफल की दृष्टि से गढ़वाल मण्डल का क्षेत्रफल उ०प्र० के क्षेत्रफल का 10.2 प्रतिशत है जिसमें देहरादून तथा पौड़ी जनपद के तराई-भावरी क्षेत्र को छोड़कर सम्पूर्ण मण्डल पर्वतीय क्षेत्र है। वर्ष 1981 की जनगणना के अनुसार मण्डल की कुल जनसंख्या 24.29 लाख है जिसमें ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत 84.3 है। कृषि अलाभकारी व्यवसाय होते हुए भी यहां की 78 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्य में संलग्न है। क्षेत्र में व्यापक बेरोजगारी की स्थिति है। पूंजी निर्माण की नगण्य दर, पुरानी व अप्रचलित उत्पादन विधि, तकनीकी ज्ञान की कमी, बैंकिंग व साख सुविधाओं का अभाव, कच्चे माल का क्षेत्र से बर्हिगमन आदि ऐसे कारण हैं जिससे पर्वतीय क्षेत्र अत्यन्त पिछड़ गये हैं। प्रायः यह कहा जाता है कि पर्वतीय क्षेत्र की मिट्टी, पानी, सपूत तथा अन्य प्राकृतिक साधन सभी मैदानी क्षेत्रों की ओर तीव्रगति से जा रहे हैं, जो लौटकर वापस नहीं आ पाते। गढ़वाल की इन विशिष्ट विशेषताओं के कारण क्षेत्र के ग्रामीण विकास के लिए मण्डल में भी वर्ष 1985 में दो क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक गंगा

यमुना ग्रामीण बैंक तथा अलकनन्दा ग्रामीण बैंक की स्थापना की गयी।

गंगा यमुना ग्रामीण बैंक

इस बैंक की स्थापना 29 मार्च 1985 को भारतीय स्टेट बैंक की देखरेख में हुई। इसकी प्रशासनिक सीमा मण्डल के तीन जनपदों-देहरादून, टिहरी व उत्तरकाशी तक है। इस बैंक का प्रधान कार्यालय देहरादून में स्थित है। बैंक की स्थापना का उद्देश्य उन जनपदों के सीमान्त कृषकों, भूमिहीन मजदूरों, ग्रामीण दस्तकारों और ग्रामीण क्षेत्र के अन्य निर्बल वर्ग के लोगों को ऋण सुविधा प्रदान करके उनका आर्थिक विकास करना है। देहरादून जनपद का मैदानी भाग बासमती चावल व लीची के लिये देशभर में प्रसिद्ध है जबकि टिहरी व उत्तरकाशी पूर्णतया पर्वतीय जनपद होने के कारण कृषि और औद्योगिक विकास की दृष्टि से शून्य जनपद कहे जा सकते हैं। यातायात व दूर संचार के साधनों का अभाव विकास के मार्ग में मुख्य अवरोध कहा जा सकता है।

बैंक के वित्तीय स्रोत

स्थापना के समय (1985) गंगा यमुना ग्रामीण बैंक की अधिकृत पूँजी रु० 100 रुपये मूल्य के एक लाख अंशों में विभाजित थी। निर्गमित पूँजी 25,000 अंश प्रत्येक 100 रुपये मूल्य वर्ग के पूर्णदत्त अंशों के रूप में 25 लाख रुपये थी। वर्ष 1986 एवं 1987 में भी अंशपूंजी पूर्ववत रही। रिजर्व बैंक के निर्देशानुसार वर्ष 1988 में बैंक की लेखाबन्दी माह दिसम्बर के स्थान पर 31 मार्च 1989 को की गयी। इस वर्ष पूँजी बढ़ाकर 46 लाख 25 हजार रुपये कर दी गयी जिसके लिए बैंक ने 21,250 नये अंश निर्गमित किए। इसी प्रकार वर्ष 1990 में बैंक ने 3750 नये अंश जारी किए इसके फलस्वरूप बैंक की अंशपूँजी 50 लाख रुपये हो गयी। वर्ष 1991 में भी यही स्थिति बैंक की सावधि जमा वर्ष 1985 में रुपये 1,61,500 थी जो 1991 लेखावर्ष तक बढ़कर 2,63,09,591 रुपये हो गयी है। आवर्ति जमा भी 9505 रुपये से बढ़कर 1991 तक रुपये 22,49,145 हो गयी है। आवर्ती जमा में वर्ष 1991 तक 237 गुनी वृद्धि हुई। इसी अवधि में बचत खाते एवं बचत जमा में 50 गुनी वृद्धि हुई। 31 मार्च 1991 को बचत खाते एवं बचत जमा में 3,34,58,634 रुपये जमा था। चालू जमा एवं अन्य जमा में भी 38 गुना वृद्धि है। बैंक को वर्ष 1986 से राष्ट्रीय बैंक (सामान्य) और योजनागत, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक तथा भारतीय स्टेट बैंक से भी निरन्तर वित्त प्राप्ति हो रही है। बैंक के वित्तीय स्रोतों में लगातार वृद्धि से स्पष्ट है कि बैंक का वित्तीय प्रबन्ध सुदृढ होता जा रहा है।

बैंक की निष्पत्ति का विवेचनात्मक मूल्यांकन

वर्तमान में बैंक की कुल 43 शाखाओं में केवल मुख्य शाखा देहरादून के शहरी क्षेत्र में है और सभी ग्रामीण क्षेत्रों में हैं। टिहरी गढ़वाल में 20,542, देहरादून में 54,071 तथा उत्तरकाशी में 38,200 व्यक्तियों पर एक बैंक की शाखा खोली गयी है। बैंक के कार्यकलापं और प्रगति का विवेचनात्मक मूल्यांकन करने के लिए बैंक की बचत गतिशीलता, ऋण वितरण लाभार्थियों का विश्लेषण करना समीचीन होगा।

बचत गतिशीलता

वर्ष 1985 में बैंक में मात्र 719 खाते खोले गये। मार्च 1991 के अन्त तक खातों की कुल संख्या बढ़कर 37710 हो गयी है। इनमें बचत खातों की संख्या 29727, सावधि जमा खाते, 5335, आवर्ती जमा खाते 2367 तथा चालू व अन्य जमा खातों की संख्या 281 है। खातों की संख्या, जमा राशि, ऋण वितरण आदि का विवरण निम्न तालिका में दर्शाया गया है

खातों, जमाराशि, ऋण वितरण और साख जमा अनुपात का विवरण

(वर्ष 1985 - 31 मार्च 1991)

वर्ष	खातों की संख्या	जमा राशि (लाख रुपये में)	ऋण वितरण (लाख रूपये में)	साख/अमानत अनुपात
1985	719	09.66	01.89	05.11
1986	5702	70.71	80.19	00.88
1987	13832	188.61	90.52	02.08
88-89	23295	347.93	143.78	02.42
89-90	30467	525.34	153.65	03.42
90-91	37710	658.44	125.61	05.24

उपरोक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि वर्ष 1985 में कुल 719 खातों में 9.66 लाख रुपये जमा हुए जबकि मार्च 1991 तक 37710 खातों में जमाराशि बढ़कर 658.44 लाख रुपये हो गयी। 5 वर्षों की अल्प अवधि में पिछड़े पर्वतीय क्षेत्र में यह वृद्धि उल्लेखनीय कही जा सकती है। खातों का विश्लेषण करने पर यह भी ज्ञात हुआ कि बचत बैंक खाता क्षेत्र में सर्वाधिक लोकप्रिय है। बैंक के साख अमानत अनुपात से यह प्रकट होता है कि वर्ष 1985 में

यह अनुपात 5.11था जबकि 1986 में जमाओं की तुलना में अधिक ऋण वितरण करने में अनुपात 1 से भी कम 0.88 रह गया। वर्ष 1987 से बैंक ने बचतों को अधिक गतिशील बनाया किन्तु ऋण वितरण में बैंक अधिक गतिशील नहीं हो पाया।

ऋण वितरण

बैंक ने अपनी 43 शाखाओं के द्वारा मार्च 1991 तक मुख्य रुप से गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करते हुए लोगों का जीवन स्तर ऊंचा उठाने के लिए ऋण वितरण किये हैं।

बैंक द्वारा वितरित की गयी ऋण राशि में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। वर्ष 1985 में बैंक ने 1.89 लाख रुपये का ऋण बांटा। वर्ष 1986 में 80.10 लाख रुपये का ऋण दिया गया और वसूली 14.31 लाख रुपये की हुई। इस प्रकार, वसूली का प्रतिशत 17.87 रहा तथा बकाया राशि 65.79 लाख रुपये है। वर्ष 1989-90 में बैंक ने अधिक ऋण वितरित न करके ऋणों की वसूली के प्रति सतर्कता बरती जिससे वसूली अनुपात बढ़कर 57.82 प्रतिशत तक पहुंच गया। बैंक के ऋण वितरण का कार्यक्रम सफलतापूर्वक चला है तथापि गरीब लाभार्थियों को रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किए जाने की आवश्यकता भी अपरिहार्य है।

गंगा यमुना ग्रामीण बैंक द्वारा स्थापना वर्ष से मार्च 1991 तक वितरित ऋणों द्वारा सर्वाधिक लाभ सीमान्त कृषक/ लघु कृषक और कृषि मजदूरों को पहुंचा है। इसके अतिरिक्त दस्तकारों, शिल्पकारों, लघु उद्यमी भी लाभान्वित हुए हैं। लाभार्थियों का विस्तृत विवरण निम्नांकित तालिका में दर्शाया गया है:—

लाभार्थियों का विश्लेषणात्मक विवेचन

(वर्ष 1985 - मार्च 1991)

वर्ष	लाभार्थी	सीमान्त कृषक/ लघु कृषक, कृषि मजदूर	दस्तकारों शिल्पकारों लघु उद्यमी	अनु०जाति/ जनजाति व गरीब वर्ग	स्वरोजगार कार्यक्रम व अन्य उद्योगों
1985	61	46	10	—	05
1986	1865	1207	584	570	74
1987	2349	1663	560	723	126
88-89	3708	3096	960	1126	69
89-90	1851	2265	829	760	03
90-91	1876	2023	777	985	02

तालिका से स्पष्ट है कि लाभार्थियों की संख्या आरम्भिक वर्षों में लगातार बढ़ती जा रही है। अनुसूचित जाति/जनजाति और गरीब तबके के लोगों की संख्या भी कुल लाभार्थियों की 30 से 50 प्रतिशत तक रही है। यद्यपि बैंक ने किसी एक वर्ग के लाभार्थियों को विशिष्ट प्राथमिकता में न रखकर सभी वर्गों को ऋण प्रदान किया है तथापि दस्तकारों, शिल्पकारों और लघु उद्यमियों को उचित प्रोत्साहन देकर ग्रामीण जनसंख्या को स्वावलम्बी बनाने के प्रयास करने ही होंगे।

बैंक की समस्यायें एवं सुझाव

भारत में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को ग्रामीण वित्त के क्षेत्र में कार्य करते हुए लगभग 17 वर्ष हो चुके हैं। गढ़वाल मण्डल में तो ग्रामीण बैंक की स्थापना को मात्र 6-7 वर्ष ही बीते हैं। ग्रामीण बैंकों की प्रगति के मार्ग में आने वाली कठिनाइयां वित्त का अभाव, संदिग्ध ऋणों के लिए निर्मित कोष की अपर्याप्तता, राजनीतिक हस्तक्षेप, दोषपूर्ण ऋण नीति, निर्धारित मापदण्ड से कम व्यवसाय, कार्यविधि सम्बन्धी कमियां मुख्य हैं। बैंक लाभदायकता में निरन्तर पिछड़ता जा रहा है। अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों का बहुत बड़ा भाग संगठित वाणिज्यक बैंकों के नियंत्रण में नहीं आ पाया है। बैंक के संगठन एवं प्रबन्ध की कमियां सर्वत्र दृष्टिगोचर होती हैं। गढ़वाल मण्डल में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के संचालक मण्डल में व्यक्तिगत सदस्यों का प्रभुत्व दृष्टिगोचर होता है जो कि बैंक के विकास में बाधक है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के अपने स्टाफ प्रशिक्षण संस्थान न होने के कारण इन्हें अपने स्टाफ का प्रवर्तक बैंक अथवा नाबार्ड के प्रशिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षण हेतु भेजना पड़ा है। स्टाफ कम होने तथा ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य करने की अरुचि के कारण बैंक के कार्यकलाप में नैसर्गिक वृद्धि नहीं हो पा रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में शाखाओं की स्थापना के लिए सुरक्षित भवन, कर्मचारियों के लिए आवासीय सुविधाएं, परिवहन और संचार की समस्यायें सर्वत्र परिलक्षित होती हैं। कर्मचारियों की वेतन असंगति, पदोन्नति आदि की समस्याओं का अभी तक निराकरण नहीं हो पाया है। गढ़वाल मण्डल के पर्वतीय भू-भाग की भौगोलिक समस्याएं भी बैंक की प्रगति में बाधक हैं। सीमित कृषि भूमि, अनुत्पादकता, असिंचित क्षेत्र, निम्न जीवन स्तर के कारण बचत प्राय: होती ही नहीं है। धनादेशों से प्राप्त राशि खाद्य पदार्थों पर व्यय हो जाती है। बचत न होने के कारण पूंजी संरचना का अभाव है। तकनीकी शिक्षा के अभाव के कारण औद्योगिक विकास का वातावरण नहीं है। मिट्टी, बल शक्ति, भूगर्भीय परीक्षण, उद्यान विकास, पशुपालन की स्थिति और सम्भावनाओं के आँकड़े व्यवस्थित रूप से उपलब्ध न होने से भी ग्रामीण बैंक को प्राथमिकता

तय करने में कठिनाई होती है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण बैंक की स्थापना जिन उद्देश्यों के लिए की गयी थी उन्हें प्राप्त करने में कठिनाई अनुभव हो रही है। ग्रामीण परिवेश में ग्रामीण आवश्यकताओं को आत्मसात किये बिना ग्रामीण बैंक, ग्रामीणों का हितैषी नहीं बन सकता।

अध्यनोपरान्त निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत हैं, जिनके अनुपालन से गंगा यमुना ग्रामीण बैंक का गढ़वाल मण्डल के विकास में सार्थक योगदान सम्भव हो सकेगा।

1. वित्तीय साधनों में वृद्धि करने हेतु विभिन्न खातों में जमा राशियों पर मुद्रा बाजार में प्रचलित दरों से प्रतिस्पर्धात्मक ब्याज दर पर जमाओं को आकर्षित कर अधिक गतिशील बनाया जाना चाहिए। शत प्रतिशत जमाऐं निक्षेप बीमा और प्रत्याय गारंटी निगम द्वारा बीमायुक्त होनी चाहिए। उत्तरकाशी जनपद में शाखाओं में वृद्धि की जानी चाहिए किन्तु यह ध्यान रखना जरूरी है कि शाखाऐं उन्हीं स्थानों पर खोली जाए जहां पूर्व में अन्य व्यापारिक बैंक न हों। जनता की छोटी-छोटी बचतों को आकर्षित करने के लिए लाकर्स, टेलर की सुविधा, अर्न्तजनपदीय अन्तरण की सुविधा तथा चैक एवं बिलों की राशि वसूलने की सुविधा भी प्रदान की जानी चाहिए।

2. बैंक की शाखाओं के ऋण वितरण और साख अमानत अनुपात का लक्ष्य निर्धारण एक सुनिश्चित मापदण्ड के अनुसार हो। राजनीतिक हस्तक्षेप से इन्हें मुक्त रखा जाना चाहिए। बैंक की ऋण स्वीकृत करने की प्रक्रिया सीधी और सरल बनाकर अनावश्यक बिलम्ब से बचना चाहिए। कृषकों को ऋण देते समय सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि फसल बोने और फसल काटने के समय को क्रमशः ऋण देने और वसूल करने से सम्बन्धित किया जाय। अवधि पार ऋणों की वसूली के लिए विशेष अभियान चलाये जाने चाहिए।

3. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक के प्रबन्ध और संगठन में सुधार लाये बिना ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास नहीं किया जा सकता। संचालक मण्डल में सदस्यों की नियुक्ति योग्यतानुसार की जानी चाहिए। कर्मचारी कुशल एवं प्रशिक्षित होने चाहिए। शहरी तड़क-भड़क से दूर ग्रामीण क्षेत्रों में निवास की निःसंदेह समस्यायें हैं तथापि कर्मचारियों के लिए इन क्षेत्रों में कार्य करने की प्रेरणादायक योजनाएं हों। वेतन विसंगति दूर कर मनोबल बढ़ाया जाना चाहिए। स्थानान्तरण और पदोन्नति की सुनिश्चित नीति द्वारा इन कठिनाइयों को दूर किया जा सकता है।

4. ग्रामीण वर्ग की सहभागिता द्वारा ब्लाक स्तर पर सेमिनार आयोजित कर ग्रामीण विकास कार्यक्रम और गरीबी उन्मूलन की अवधारणा को सार्थक करने का दायित्व ग्रामीण बैंकों को लेना ही होगा।

3/1358, सुभाष नगर
हल्द्वानी (नैनीताल)
पिन 263141

सन्दर्भ एवं स्रोत

1. अखिल भारतीय ऋण एवं साख सर्वे 1971-72, 1981-82 तथा भारतीय ग्रामीण पुनरीक्षण समिति 1969
2. इण्डिया 1983 पृष्ठ 510 से 513
3. गंगा यमुना ग्रामीण बैंक के वार्षिक प्रतिवेदन वर्ष 1985 से 1990-91 तक।
4. पपोला टी०एस - डैवलैपमैण्ट आफ हिल एरिया, इश्यू एण्ड एप्रोचेज (एडिटेड) हिमालया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई।
5. रिजर्व बैंक आफ इण्डिया, रिपोर्ट आन फण्ड प्रोगैरस आफ बैंकिंग इन इण्डिया (1986-87) तथा आर०बी०आई० बुलेटिन, अक्टूबर 1990।

का अभाव दिखायी देता है। इसके अतिरिक्त वाणिज्यिक बैंकों की तुलना में क्षेत्रीय बैंकों में कार्यरत कर्मचारियों के वेतन तथा अन्य सुविधायें कम होने के कारण कर्मचारियों की मनोवृत्ति में पलायनवाद है। कार्यक्षेत्र में कार्य करने वाले कर्मचारियों को भी पर्याप्त सुविधाओं का अभाव है।

(4) संचालनात्मक समस्यायें

दूरवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित बैंकों के लिये जमायें प्राप्त करने के अवसर अपेक्षाकृत कम रहते हैं। ऋण देने के अपने प्रमुख कार्य के सम्पादन में बैंक को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत दिये जाने वाले ऋणों में उपयुक्त व्यक्ति का चुनाव तथा गारंटी आदि को लिये सम्पत्ति आदि की सुरक्षित रखने का प्रावधान न होना एक विशिष्ट समस्या है। इसके अतिरिक्त राजनीतिक दबाव, शाखाओं का अनुपयुक्त भवनों में तथा स्थानों पर होना, अपर्याप्त सुरक्षा की व्यवस्था, ड्राफ्ट निर्गत करने का अधिकार न होना, नकद साख का न प्रदान किया जाना, ग्रामीण जनता का कम पढ़ा-लिखा होना आदि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के सम्मुख आने वाली समस्यायें हैं।

सुझाव एवं सम्भावनायें

वर्तमान स्थिति में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिये उल्लेखनीय कार्य किया है। उपरोक्त समस्याओं का समाधान करने के लिये निम्न सुझावों पर अमल किया जा सकता है:—

(अ) क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की कार्यविधियों में राष्ट्रीय स्तर पर एकरूपता लाने के प्रयास किये जाने चाहिये।

(ब) मुख्य कार्यालय (Head Office) तथा शाखा के बीच क्षेत्रीय कार्यालय (Regional Office) स्थापित किया जाना चाहिये।

(स) ग्रामीण क्षेत्र की समस्याओं से परिचित एवं इस क्षेत्र में विशिष्ट योग्यता रखने वाले व्यक्तियों को ही अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया जाना चाहिये तथा उनका कार्यकाल पूरा होने दिया जाय।

(द) कर्मचारियों को वाणिज्यिक बैकों की तुलना में आकर्षक वेतन तथा अन्य सुविधायें प्रदान की जायें जिससे उनकी पलायनवादी प्रवृत्ति पर अंकुश लग सके।

(य) ऋण के निष्पादन में विलम्ब के लिये शाखा प्रबन्धकों की एक निश्चित अवधि में प्रत्येक प्रकरण को निबटाने के निर्देश निर्गत किये जाने चाहिये।

(र) ऋणों के दुरूपयोग को रोकने तथा उचित व्यक्ति तक पहुंचाने के लिये भ्रष्टाचार पर रोकथाम हेतु आवश्यक कदम उठाने होंगे। इसके अतिरिक्त ऋणों के निर्गमन में राजनीतिक, अनुचित प्रभाव को रोकने के लिये प्रभावी कदम उठाये जाने चाहिये।

(ल) दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में भी सुगम पहुंच, हवा एवं रोशनी, सुरक्षा के पर्याप्त प्रबन्ध आदि बातों का बैंक के भवन का चुनाव करते समय ध्यान रखा जाना चाहिये।

समय-समय पर भारत-सरकार ने भी विभिन्न आयोगों एवं अध्यक्षों के माध्यम से क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की भूमिकाओं के अवलोकन एवं विश्लेषण का प्रयास किया है। 23 जून, 1978 में श्री एम.एल. दंतवाला की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गयी जिसका कार्य क्षेत्र ग्रामीण बैंकों की क्रियाओं को उनके स्थापना के उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकित करना था। इस समिति ने स्वीकार किया कि क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने ग्रामीण क्षेत्रों के विकास एवं प्रगति की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया है। सन् 1986 में केलकर कमेटी ने पुनः अपने प्रतिवेदन में क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की उपयोगिता को स्वीकार किया। इसके बावजूद ग्रामीण बैंकों के विलय, समापन आदि की अनेकों चर्चायें होती रही हैं और इसी संदर्भ में समय-समय पर विभिन्न योजनायें एवं सुझाव भी प्रस्तुत होते रहे हैं जिनमें निम्न का उल्लेख तर्कसंगत है:—

1. समस्त क्षेत्रीय ग्रामीण बैकों का विलय, उनका सम्बन्ध, उनके प्रायोजक बैंकों में कर दिया जाना चाहिये।

2. राष्ट्रीय एवं राज्यीय स्तर पर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के पुर्नसंगठन की आवश्यकता है।

3. समस्त क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का प्रबन्ध एवं नियन्त्रण उनके प्रायोजक बैंकों से 'राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक' (नाबार्ड) को हस्तान्तरित कर दिया जाना चाहिये।

4. ग्रामीण एवं दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में कार्यरत क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों एवं वाणिज्यिक बैंकों की शाखाओं का विलय कर 'भारतीय ग्रामीण बैंक' की स्थापना की जाय।

5. पूंजी में राज्य एवं प्रायोजक बैंक का अंश समाप्त कर दिया जाना चाहिये।

6. क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की डिमांड ड्राफ्ट्स निर्गत करने तथा नकद साख प्रदान करने आदि के अधिकार प्रदान किये जाने चाहिये।

वाणिज्य विभाग,
साहू जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
नजीबाबाद

समीक्षा

पुस्तक का नाम — ग्रामीण विकास एवं अर्थव्यवस्था
लेखक — सुबह सिंह यादव
प्रकाशक — रावत पब्लिकेशंस
3 नं० 20, जवाहरनगर, जयपुर- 302004
मूल्य — 200/- रु०

स्वातन्त्रोत्तर भारत में ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कल्पनातीत परिवर्तन हुये हैं। सरकार द्वारा किये गये व्यवस्थित प्रयासों के परिणामस्वरूप ग्रामीण विकास के मूल ढांचे में सुधार भी दृष्टिगोचर हुआ है। सरकार ने अपनी योजनाओं में ग्रामीण विकास की सम्पूर्ण नीति को प्रतिबिम्बित किया है। तथापि अनेक क्षेत्रों में अभी तक ठोस निष्कर्ष उभरकर आने शेष हैं। भारतीय ग्रामीण आर्थिक चिन्ता समृद्ध एवं सघन होते हुये भी अपेक्षित रूप से अभिहित नहीं किया गया। इस तरह से ग्रामीण विकास के कुछ अन्य ऐसे सम्बद्ध विषय हैं जिनका संगत उत्तर अभी तक हमें नहीं मिल पाया है। इस स्थिति में ग्रामीण विकास का सुव्यवस्थित अध्ययन करना एवं ग्रामीण विकास की कठिन समस्याओं का तदनुरूप समाधान सुविचारित करना समकालीन ग्रामीण विकास साहित्य की ज्वलंत आवश्यकता है।

इन परिप्रेक्ष्य में श्री सुबह सिंह यादव ने "ग्रामीण विकास एवं अर्थव्यवस्था" शीर्षक पुस्तक की रचना करके दीर्घकालीन से महसूस की गई एक महती आवश्यकता को पूरा करने के साथ-साथ संदर्भित साहित्य के बड़े असाध्य अंतराल को पाटा है। भारतीय ग्रामीण साहित्य का ऐसा सुसम्बन्ध, संगत क्रमबद्ध, सरस एवं भावपूर्ण विवेचन अभी तक हिन्दी में तो क्या अंग्रेजी माध्यम से भी नहीं हुआ है। महत्वपूर्ण बात यह है कि अपनी अभिव्यक्ति की सम्प्रेषणता व प्रभावोत्पादकता के साथ-साथ लेखक इस बात के लिये काफी सजग रहा है कि विश्लेषण गागर में सागर की तरह संक्षिप्त, सुनिश्चित तथा स्वःउद्बोधक हो। यही कारण है कि सम्पूर्ण पुस्तक में एक भी शब्द बोझिल नहीं प्रतीत होता है तथा साथ ही साहित्यिक भाषा से आप्लावित विषय इस सीमा तक आकर्षक एवं श्रेयस्कर है कि एक भी शब्द सुअध्ययन के बिना ओझल नहीं हो सकता।

पुस्तक में कुल 31 अध्याय हैं जो सुघड़, सुसंहत एवं स्फूर्ति दायक शैली में लिखे गये हैं। प्रत्येक अध्याय पर अनायास दृष्टिपात करने से ही विषय की सम्पूर्णता तथा विस्तृता का ज्ञान हो जाता है। विषयों का चुनाव बड़ी सूझ बूझ तथा तार्किक ढंग से किया गया है जिससे किसी भी स्तर पर क्रमबद्धता में फिसलन नहीं आ पायी। इससे पाठकों को आधोपांत रुचि बनाये रखने में चरणबद्ध सफलता स्वतः ही मिल जाती है। स्वतन्त्रता के बाद भारत के ग्रामीण जीवन में हुये व्यापक परिवर्तनों को सैद्धान्तिक ढांचे में पिरोए हुये अद्यतन प्रवृतियों का सांगोपांग विवेचन पुस्तक को ग्रामीण विकास की बुलंद ऊंचाइयों पर पहुंचा देता है। ग्रामीण विकास के हर संभव पहलू का तर्कपूर्ण एवं प्रासंगिक विवेचन पुस्तक की उपादेयता के त्वरित आयामों को स्वतः ही स्पष्ट कर देता है।

"स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतीय ग्रामीण परिदृश्य में विज्ञान तथा तकनीकी के अनुप्रयोग एवं नव प्रवर्तनों की पूरकता के परिणामस्वरूप व्यापक रूपान्तरण हुआ है। ग्रामीण क्षेत्रों में आधुनिकीकरण तथा संरचनात्मक परिवर्तन को अतीव उत्साह एवं आशा के साथ ग्रहण किया गया। 1970 के दशक में आरम्भ किये गये विभिन्न गरीबी उन्मूलन एवं रोजगार सृजक कार्यक्रमों के सन्दर्भ में अब रोजगार उन्मुख ग्रामीण अर्थव्यवस्था का सूक्ष्मातिसूक्षम अध्ययन करना अपरिहार्य हो गया है।

पुस्तक के प्राक्कथन की ये प्रारंभिक पंक्तियां विषय वस्तु के मूल दर्शन, उसकी व्यापकता तथा लेखक के वैचारिक चिंतन का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करती है। मोटे तौर पर पुस्तक को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम भाग में ग्रामीण अर्थव्यवस्था की प्रकृति से सम्बद्ध विषयों–ग्रामीण अर्थव्यस्था की प्रकृति, ग्रामीण जनसंख्या, ग्रामीण बेरोजगारी, ग्रामीण गरीबी, आर्थिक प्रगति और ग्रामीण विकास, ग्रामीण ऋणग्रस्तता आदि विषयों के समानान्तर विभिन्न गरीबी निवारक तथा रोजगार सृजक कार्यक्रमों का सम्यक् वर्णन हुआ है। द्वितीय भाग में–ग्रामीण विकास की आधारिक संरचना पर केन्द्रीभूत हुआ है जिसके अन्तर्गत सिंचाई, बाढ़ नियंत्रण, कमाण्ड क्षेत्र विकास सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम, ग्रामीण विद्युतीकरण, ग्रामीण परिवहन, पड़त भूमि विकास, बायोगैस तकनीक, शुष्क भूमि खेती परियोजना तथा विज्ञान एवं तकनीक के अनुप्रयोग के अनुक्रम में कृषि सेवा केन्द्र, ग्रामीण शिल्पी, विस्तार सेवाएं, ग्रामीण आवास तथा लघु एवं कुटीर उद्योगों का सारगर्भित विश्लेषण हुआ है।

आर.एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : (डी (डी एल) 12057/92
पूर्व भुगतान के बिना डी.पी.एस.ओ. दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

RN/708/57
P & T Regd. No. D (DL) 12057/92
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at DPSO, Delhi-54

डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और
वीरेन्द्रा प्रिंटर्स, हरध्यान सिंह रोड, करोल बाग